ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

अंक 18, जुलाई-अगस्त 2018

सम्पादक

सुभाष चंद्र

सह-सम्पादक

अरुण कैहरबा

सम्पादन सहयोग

जयपाल, कृष्ण कुमार, अविनाश सैनी, अमन वाशिष्ठ, राजकुमार जांगड़ा

सलाहकार

प्रो. टीआर कुंडू, परमानंद शास्त्री, ओमप्रकाश करुणेश सुरेन्द्रपाल सिंह, सत्यवीर नाहड़िया

प्रबंधन

विपुला, विकास साल्याण

प्रसार

सुनील, इकबाल, राजेश कुमार, ब्रजपाल

कानूनी सलाहकार

राजविन्द्र चन्दी

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

संपादकीय - 94164-82156

संपर्क - व्यवस्था - 99918-78352

ई-मेल : haryanades@gmail.com

Website: desharyana.in

facebook.com//desharyana

youtube.com//desharyana

सहयोग राशि

व्यक्तिगत:	3 वर्ष 500/,	1 वर्ष 200/-
संस्था:	3 वर्ष 1000/-,	1 वर्ष 400/-
आजीवन:	5000/- संरक्षक :10000/-	

ऑनलाईन भुगतान के लिए

देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र

बैंक खाता संख्या - 50297128780,

IFSC: ALLA0211940

इबकी बार

संपादकीय	शासन-सत्ताएं जनता पर त्रासदियां थोंप रही हैं		02
कहानियां	कमलेश भारतीय	- अपमान	04
	सुशांत सुप्रिय	- रात	11
बीच बहस में	राजेन्द्र चौधरी	- आरक्षण की ज़रूरत ...	12
	धर्मवीर सिंह	- गरीबी उन्मूलन नहीं आरक्षण	15
सफरनामा	सुरेन्द्र पाल सिंह	- आस्ट्रेलिया यात्राः एक झलक	60
अनुवाद	राजेन्द्र सिंह - असली मालक (कहानी)		07
	सुभाष चंद्र - रवींद्रनाथ टैगोर (कविता)		59
	परमानंद शास्त्री- सुरजीत सिंह सिरड़ी (कविता)		16
कविताएं	पवन चौहान -18, रानी कुमारी - 20,	नरेश मीत	-21
	सावित्री बाई फुले - 34,	अंजली तुसंग	64
वक्तव्य	प्रो. सुभाष चंद्र - प्रेमचंद का साहित्य		22
विरासत	सावित्री बाई फुले	- पत्र	32
शख्शियत	स्वामी वाहिद काज़मी- सूफी संत-कलंदर पानीपत		29
पठनीय पुस्तक	कमलानंद झा- तुलसीदास का काव्य-विवेक ...		35
	शकुंतला - डार्क हॉर्स : सच होते सपनों ...		38
इतिहास के पन्नों से	सिद्दीक अहमद 'मेव'- खानवा का युद्ध और मेवाती		40
श्रद्धांजलि	रमणीक मोहन	- इन्सानियत ही ख़ुदा की इबादत	42
व्यंग्य	शरद जोशी - शेर की गुफा में न्याय		41
लघु कथा	राधेश्याम भारतीय		21
गजल	राजकुमार जांगड़ा 'राज'		10
आलेख	अविनाश सैनी- सावन की नायिका - कंवर निहालदे		44
	इंद्र जीत सिंह - गहराता किसान संकट....		62

गतिविधियां

मुलख सिंह - बाल मनोविज्ञान और मानसिक समस्याएं	54
डॉ. विनोद प्रकाश गुप्ता - 'नवल प्रयास' राज्य स्तरीय साहित्य उत्सव	56
अरुण कैहरबा - शहीद उधम सिंह - विचार-गोष्ठी	55
अरूण कैहरबा - मॉब लींचिंग - सामाजिक न्याय का सवाल	57
अरुण कैहरबा - भारत पाक अमन दोस्ती यात्रा	58

लोकधारा

संवाद	सीमा रानी - वर्तमान में साँग की दिशा और दशा			48
कविता	विनोद वर्मा दुर्गेश	- 31	भूपसिंह 'भारती'	46
रागनी	विक्रम राही	- 46	मनजीत भोळा	47
लोक कथा - सोंद्यां कै तो ...		- 47	**पाठक – पाती**	64

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक, समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।
स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

शासन सत्ताएं जनता पर त्रासदियां थोंप रही हैं

खौफ़ पैदा करने वाले यूँ तो क़िस्से भी बहुत हैं,
ज़िन्दगी में बे सबब हम लोग डरते भी बहुत हैं।

- बलबीर सिंह राठी

भारत के अग्रणी राज्य केरल में जान-माल का अभूतपूर्व नुक्सान हुआ है। शासन सत्ताओं के भेदभाव, उदासीनता व त्रासदी को साम्प्रदायिक रंग देने वाले शैतानी शोर-शराबे भी हैं, लेकिन रेखांकित करने योग्य इंसानी जज्बे की मिसालें भी कायम हुई हैं। कालेज की छात्रा मछली बेचकर कमाए गए डेढ लाख रूपए की रकम बाढ़ पीड़ितों के लिए दान कर देती है, बाढ़ के दौरान कहीं से खाना, कपड़ों और अन्य जरूरी सामान की मांग के लिए संदेश आते हैं और कुछ मिनटों के बाद ही जरूरत पूरी होने के संदेश आने लगते हैं तो जिजीविषा के सामूहिक संघर्ष के दर्शन होते हैं। संकट के समय में दिखने वाला यह जज्बा सामान्य दिनों में भी कायम हो जाए इसके लिए अभी खासा लंबा रास्ता तय करना होगा, लेकिन ये उसकी संभावना में विश्वास जताते हैं।

केरल-उत्तराखंड जैसी महात्रासदियां चीख चीख कह रही हैं कि हमारी विकास-नीतियों की दिशा विनाशकारी है। ये त्रासदियां दिखाई तो देती हैं प्राकृतिक, लेकिन असल में हैं ये मानव निर्मित। मीडिया के विभिन्न माध्यमों में शासन-सत्ताएं विकास के लुभावने चित्र दर्शाकर प्राकृतिक खनिजों के दोहन का औचित्य ठहराते रहते हैं। विकास के इस विनाशकारी तांडव का अंदेशा जताती विशेषज्ञों की रिपोर्टें ठण्डे बस्ते में पड़ी रहती हैं। कथित विकास के योजनाकार, सत्ता पे काबिज नेता व प्रशासकों के प्रकृति के प्रति अपराधों का खामियाजा भुगतना पड़ता है साधारण जनता को। जिनकी सारी जिंदगी की कमाई एक पल में बह जाती है। प्राकृतिक विपदाएं तबाही लाती हैं जनता के लिए लेकिन कथित विकास के पुनर्निमाण में बिल्डर व ठेकेदार मुनाफे की फसल काटते हैं। अंग्रेजी शासन भारतीय जनता पर जिस तरह अकाल थोंपता था, लगता है वर्तमान शासन सत्ताएं जनता पर त्रासदियां थोंप रही हैं।

हमारे आर्थिक विकास को राजनीति तय करती है, लेकिन विडम्बना ही है कि नीतियां और भविष्य की योजनाएं राजनीति की सार्वजनिक बहस-विमर्श-बातचीत से गायब ही हैं। राजनीतिक विमर्श के नाम पर धर्मगत-जातिगत उत्पातों के लिए लामबंदियों की कवायदें हैं और चारों तरफ यही शोर है कि चुनाव कौन जीतेगा और किन समीकरणों से। मानो सत्ता पर काबिज होना और उसमें बने रहना ही राजनीति और लोकतंत्र का पर्याय हो गया है। राजनीतिक नेताओं व दलों की जनता को देश की नीतियों पर चर्चा में शामिल करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। पिछले कुछ समय में नेताओं और राजनीतिक दलों में अभूतपूर्व गिरावट आई है। पदों की गरिमा-नैतिकता-मर्यादा जैसे बीते जमाने की बातें हो गई हैं।

समाज का निम्न वर्ग अपने अस्तित्व के संघर्ष में इस तरह फंसा है कि देश दुनिया के बारे में सोचने की फुरसत ही नहीं है। आधार-कार्ड, राशन-कार्ड,मनरेगा में रोजगार पाने जैसे छोटे-छोटे कामों के लिए राजनीतिक नेताओं के मुख की ओर देखने को विवश है। देश का मध्य वर्ग जिसके पास समय भी है और चिंतनशीलता भी है, उसका बहुत बड़ा हिस्सा उपभोक्तावाद, कैरियर, आरामपरस्त और इतना आत्मकेंद्रित हो गया है कि उसे अपने बीवी-बच्चों और घर-परिवार के चमकदार भविष्य के निर्माण के अलावे कुछ सूझता ही नहीं। वह कार,मकान व शिक्षा ऋण लेने व चुकाने की जुगत में ही अपने जीवन की सार्थकता की तलाश कर रहा है। वह अपनी ऐतिहासिक भूमिका भूलकर

सत्ता का पिछलग्गू हो गया है। उच्च वर्ग की देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, लेकिन वह सरकारी संपतियों को लूटने में ही अपने ज्ञान व कौशल का उपयोग कर रहा है।

साहित्यकार, रचनाकार, बुद्धिजीवी भी समाज को कोई रास्ता नहीं सुझा पा रहे। सामान्य जन से हमदर्दी रखते हुए भी लेखन से जिजीविषा का संदेश जनता तक नहीं पहुंचा पा रहे। अधिकांश साहित्यिक लेखन व विमर्श साहित्यकारों की पारस्परिक चकल्लस तक सीमित रह गया है। इसी का परिणाम है कि धर्म के नाम पर अंधविश्वासों-पाखंडों का बोलबाला हो रहा है। सत्ता के कुचक्रों में फंसकर लोग अपराधिक प्रक्रियाओं का हिस्सा बन रहे हैं। सचेत व जिम्मेवार नागरिक की बजाए वे भीड़ में तब्दील होकर अपने ही वर्ग -बंधुओं पर हमले कर रहे हैं। यह सही है कि समाज में आदर्शवादी तत्व पूरी तरह गायब नहीं हो गए हैं और इन्होंने सत्ता की अमानुषिक क्रूरताओं के खिलाफ यत्र-तत्र निर्णायक संघर्ष किए हैं लेकिन क्रांतधर्मी-प्रगतिशील राजनीतिक शक्ति के अभाव में इन संघर्षों को कोई ठोस आकार नहीं मिल पा रहा।

देस हरियाणा - बढ़ते कदम

इस अंक के साथ 'देस हरियाणा' के तीन साल पूरे हो रहे हैं। तीन वर्ष की योजना बनाकर ही 'देस हरियाणा' का प्रकाशन आरंभ किया था। तीन वर्षों में स्तरीय सामग्री के चयन, प्रकाशन, प्रसारण व उस पर मंथन व साहित्यिक- सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन की अनेक उपलब्धियां हैं, जिनकी चर्चा फिर कभी। फिलहाल इतना ही कि 'देस हरियाणा' को पाठक समाज से मिले स्नेह के मद्देनजर इस योजना को तीन साल से बढ़ाकर पांच साल कर रहे हैं। इस दौरान 'देस हरियाणा' को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर जिन सुधीजनों का तनिक भी सहयोग मिला, उन सबका टीम 'देस हरियाणा' की ओर से धन्यवाद। (जिन्होंने 'देस हरियाणा' की तीन वर्ष की सदस्यता ग्रहण की थी, उन सबसे विनम्र निवेदन है कि वे अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करवा लें)

अपने तीन वर्ष के अनुभव व विश्वास के आधार पर टीम 'देस हरियाणा' ने कई महत्वाकांक्षी योजनाएं आरंभ की हैं, उन्हें साझा करते हुए खुशी हो रही है। लचर डाक-व्यवस्था के कारण हम 'देस हरियाणा' को हर पाठक तक पहुंचाने में समर्थ नहीं हो पा रहे। बहुतेरी बार पत्रिका के सहयोगियों से इस संबंध में अपील की कि वे अपने पास-पड़ौस में पत्रिका के पांच पाठक बनाएं ताकि पंजीकृत डाक द्वारा पत्रिका भेजकर उसकी पहुंच सुनिश्चित की जा सके। लेकिन गिनती के साथियों से ही इस तरह का सकारात्मक सहयोग मिला। जिन साथियों को पत्रिका नहीं मिल पाती या जो खरीदकर पत्रिका पढ़ने में रुचि नहीं लेते उनके लिए हमने 'देस हरियाणा' की बेवसाइट desharyana.in पर पत्रिका के सभी अंक उपलब्ध करवा दिए हैं यहां पत्रिका को पढ़ा जा सकता है और डाउनलोड़ करके सहेजा जा सकता है। इस बेवसाइट पर पत्रिका में छपी सामग्री के अलावा भी साहित्य, समाज, विरासत व समसामयिक मुद्दों पर सामग्री है, हमारा विश्वास है कि इससे साहित्य की उपलब्धता में व उसके विमर्श में सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

'देस हरियाणा फिल्म सोसाइटी' के माध्यम से सामाजिक सरोकारों की फिल्मों-डाक्यूमेंट्रियों का प्रदर्शन, उन पर चर्चा-परिचर्चा करके उसे इंटरनेट तथा पत्रिका में प्रकाशन करेगी। इससे सिनेमा में कार्य करने के इच्छुक सृजनकर्मियों को तो अवसर मिलेगा ही, बल्कि फिल्म देखने के नजरिये में रचनात्मक बदलाव आएगा। कोशिश रहेगी कि 'देस हरियाणा' की ओर से दर्शकों को साल में एक-आध लघु-फिल्म व डाक्यूमेंट्री भी देखने को मिले।

'देस हरियाणा सृजनशाला' के तहत नवोदित कलाकारों के लिए साहित्य लेखन, नाट्य व चित्र कला की कार्यशालाएं आयोजित की जाएंगी। प्रतिष्ठित-अनुभवी साहित्यकार-कलाकारों और नवोदित सृजनकर्मियों के परस्पर संवाद से प्रदेश में साहित्य-कला के क्षेत्र में रचनात्मक परिवेश का निर्माण होगा।

'देस हरियाणा विडियो' में साहित्यिक-सांस्कृतिक विषयों पर संवाद, साहित्यकारों की रचनाओं का प्रस्तुतिकरण, विषय विशेषज्ञों से विभिन्न विषय के छात्रों के ज्ञानवर्धन व परीक्षोपयोगी सामग्री विडियो ऑडियो में उपलब्ध करवाई जाएगी।

समस्त योजनाओं के लिए स्वाभाविक तौर पर धन व मानव संसाधनों की आवश्यकता होगी। जो इन कार्यों को फलीभूत होते देखना चाहते हैं वे इसमें सहयोग करेंगे ऐसी उम्मीद है।

इस अंक में

'देस हरियाणा' का अंक-18 आपके हाथों में है, इस अंक में आप एक देशज खुशबू महसूस करेंगे।

पुनश्चः 'देस हरियाणा' वेबसाइट desharyana.in तथा यूटयूब चैनल desharyana को निरंतर देखने व प्रचारित करने में सहयोग की जरूरत है। आशा है आपसे सहयोग मिलेगा।

डा. सुभाष चंद्र

अपमान

□ कमलेश भारतीय

पत्र मेरे हाथ में और मैं अपने पुराने शहर की यात्रा पर निकल पड़ा हूं- मन ही मन! अपने पुराने शहर से बुलावा आया है और मैं इसी पशोपेश में हूं कि इस बुलावे पर जाऊं या नहीं। यों कभी कभार किसी न किसी मित्र का पत्र आया रहता है या राजधानी में कोई न कोई काम निकल आने पर कोई-कोई साथी मिल जाता तो सुकून मिल जाता। पुराने साथियों को उन्हीं के साथ बातचीत के लंबे दौर में याद कर लेता। पर इस पत्र और आज तक मिलने वाले पत्रों में बहुत फर्क है। यह साधारण हाथ से लिखा हुआ पत्र नहीं है। यह सही अर्थों में निमंत्रण पत्र है जिसके शब्द बता रहे हैं कि पुराने शहर में मुझे सम्मानित किया जाएगा।

असल में अपने पुराने शहर में हम लोगों ने मिल कर एक संस्था बनाई थी। छोटा सा शहर था हमारा। छोटी-छोटी तंग सी गलियां और छोटी ईंटों वाले मकान इसके बावजूद इरादे छोटे नहीं थे हमारे।

हमारे शहर में चंदा मांग कर धार्मिक उत्सव मनाने और किसी लोक-नायक या कव्वाली गाने वाली को बुला कर 'वाह-वाह' करने वालों व अदाओं की नकल उतारने वालों की कमी न थी। किसी सुरमई शाम को लोकगायक को सुनने वालों की भीड़ की कमी न होती। बचपन में ऐसे किसी कव्वाली वाली की अदाओं के साथ सुने गए ये बोल आज तक नहीं भूले 'उनके पांवों में मेहंदी लगी है कि उनके पांव आने-जाने के काबिल नहीं हैं।' जब-जब यह पंक्ति कहीं सुनता हूं तब-तब छोटे शहर के कद्रदानों की 'हाय-हाय' भी कानों में गूंजने लगती है।

शहर में दो सिनेमाघर भी थे। जो पहले बना था उसे पुराना और जो बाद में बना था उसे नया सिनेमाघर कहा जाता था। वैसे तो सिनेमाघरों के मालिकों ने इनके नाम भी रखे थे पर उन नामों से जनता को क्या लेना देना था, उसे तो नया और पुराना सिनेमाघर कहना ही भाता था।

देखा जाए तो हमारा वह शहर एक बड़ी अनाज मंडी के रूप में दूर-दूर तक जाना जाता है। इतिहास की किताबों में भी इस शहर को एक गांवों से घिरे हुए शहर के रूप में दिखाया गया है। सभी लोग यही कहते हैं कि यह शहर का शहर है तो गांव जैसा गांव भी।

शहर की सुविधाएं भी हैं तो गांव की सौगातों की भी कमी नहीं। इसलिए इस शहर के लोगों में फायदा-नुकसान देख कर ही काम करने की प्रवृत्ति बन चुकी है।

जब मैं कॉलेज में पढ़ रहा था तब अनाज मंडी के व्यापारियों के घरों के लड़के भी हमारे हमजमाती थे। उनकी आंखों में भी फायदा-नुकसान साफ-साफ पढ़ा जा सकता था। कैंटीन में दोस्तों के बीच ठहाके लगाते हुए वह साफ शब्दों में कहता-जानी !अपनी मौज मस्ती के यही दो-चार साल हैं बस। फिर गज हाथ में लेकर कपड़े के थान खोलते बंद करते जिंदगी गुजारनी है। वाह क्या जीवन दर्शन था।

कॉलेज के दिनों में ही बंगलादेश के शरणार्थी देश-भर में फैले थे। बस-अड्डे पर, रेलवे स्टेशन पर जगह-जगह ऐसे शरणार्थी देखे जा सकते थे। तब हम लोगों ने उनकी हालत पर आंसू बहाते हुए एक नाटक खेला था। उन्हीं दिनों मैंने कविता जैसी कुछ चीजें लिखी थीं और दोस्तों में 'कवि जी' मशहूर हो गया था। यहां तक कि कैंटीन वाला देवकीनंदन भी अपने उधार के रजिस्टर पर मेरा नाम न लिखकर 'कवि जी' ही लिखा करता था।

इसके बावजूद जब हमने कॉलेज छोड़ा तब अनाज मंडी के घरों से आने वाले हमजमातियों ने यही पूछा-कवि जी! अब कविता लिखा करोगे या कोई काम भी करोगे?

तो दो टूक शब्दों में बात यह है कि मेरे पुराने शहर में कविता लिखना, साहित्य पढ़ना या नाटक खेलना कोई इज्जतदार आदमी का काम नहीं है। वहां तो 'उनके पांव में मेहंदी लगी है' गाने वाली पर नोट बरसाना और आंखों-आंखों में सलाम करना बड़प्पन वाला काम है।

आज भी मुझे याद है कि कितने उत्साह से हम लोगों ने इकट्ठे होकर शहर की हवा बदलने का प्रयास करने के लिए एक संस्था बना डाली थी। हुआ यह था कि एक लंबे-ऊंचे कद के युवक ने मुझे बीच सड़क में रोककर पूछा था-आप कहानियां लिखते हैं?

उसकी आंखों में कहीं भी फायदा-नुकसान वाली बात मैं पढ़ नहीं पाया था। वह मेरी तरह किसी गांव में पढ़ाने जाता था। उसने बताया कि उसे नाटक खेलने, नाटक लिखने का शौक है। बचपन में रास-लीला व कृष्ण लीला में भाग लेता रहा और फिर गली के लड़कों के साथ किसी वटवृक्ष के नीचे नाटक-मंडली बनाता रहा। शहर में नाटक लिखा तो जा सकता है पर उसे खेला भी जाए ,ऐसा मुश्किल लगता है। उसने अपना नाम देवेंद्र बताया।

एक से दो भले। हम एक साथ हो लिए और मुझे कॉलेज के दिन याद आ गए। ऐसे कितने कलाकार कॉलेज में होंगे पर कॉलेज के बाद मंच न मिलने के कारण सिर्फ रोजी-रोटी में जिंदगी व्यतीत करने लगे होंगे। मैं यह बताना तो भूल ही गया था कि शहर में दो कॉलेज भी थे। लडक़े व लड़कियों के अलग-अलग।

हजारों की आबादी वाले शहर में कुछेक लोग पहले तो एक जैसी रुचि होने के कारण कभी-कभार मिलते रहे थे परंतु मैंने और देवेंद्र ने यह अनुभव किया कि शहर की हवा बदलने के लिए इकट्ठे होकर काम करने की जरूरत है।

इसी तलाश के दौरान भंगड़े की कला में माहिर सुखविंद्र मिला। उसकी भी यही समस्या थी कि वह अकेला भंगड़ा न दिखा सकता था। नृत्य में पारंगत पूनम मिली पर वह अपनी कला को कमरे तक सीमित किए हुए थी, सुधा मिली जिसके गीत कॉलेज के मंच पर गूंजते थे,, विकास मिला जिसे अभिनय का शौक था, लोमेश मिला जो ब्रश के साथ मनुष्य की भावनाओं क्रोध, प्रेम को सामने ला सकता था लेकिन हम सब लोग अब तक बिखरे हुए थे। हमारी ताकत बिखरी हुई थी।

जब एक तरह के पंछी एक डार बनाकर उड़ते हैं तब सबका ध्यान खींच लेते हैं। इस तरह शहर में हमारी संस्था ने सबका ध्यान खींच लिया था।

उन्हीं दिनों नाट्य-विद्यालय से एम.ए. करके पुनीत आया था। उसे निर्देशन की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। इसके बावजूद हमने शुरूआत की थी एक कला प्रदर्शनी से। जिस शहर में ड्राइंग को कला मान लिया जाता हो और अच्छी ड्राइंग करने वाले की प्रशंसा में कसीदे काढ़ दिए जाते हों, उस शहर के लोगों को कला प्रदर्शनी देखने के लिए बुला लाना कोई छोटी बात नहीं थी।

हमारे शहर में एक ही कलाकार दूर-दूर तक मशहूर थे पर उन्हें यही गम सताता रहता था कि उन्हें अपने ही शहर में लोग जानते तक नहीं हैं। असल में उन्होंने कला का सफर घरों की दीवारों पर चित्र बनाने से शुरू किया था। फिर वे फोटोग्राफर भी ऐसे कि जिससे फोटो खिंचवाने के लिए भी पहले मिलकर वक्त तय करना पड़े। फोटो से आगे बढक़र पोर्टेट बनाने लगे। कला के अगले पड़ाव में वे चित्रकार बन गए। बड़े-बड़े शहरों में चित्रकला प्रदर्शनियों में चित्र शामिल हुए, इनाम मिले पर अपने शहर में जब भी लौटे अजनबी की तरह लौटे।

अपने छोटे से स्टूडियो में गर्दो-गुबार से भरे चित्रों को निहारते, जाम थामे, बातचीत के दौरान वे अक्सर कहते—मैंने दिल्ली की सड़कें जवानी में सोभा सिंह के साथ नापी थीं। अगर उसने सोहनी-महिवाल का चित्र बनाया तो मैंने दरिया की भागती सोहनी बनाई। देखो! यह मेरी सोहनी है। इसके भागते पांव और आंखों की बेचैनी के साथ-साथ इसके बेतरतीब कपड़े इसकी हालत बयान कर रहे हैं कि नहीं? लगता है कि सदियों की बिछड़ी सोहनी अपने महिवाल को पाने के लिए कितनी बेचैन है।

लोमेश कई बार उनके मुंह से यही बातें सुन चुका था। रह-रहकर उनके चित्रों की प्रदर्शनी लगाने की बात उसे सताती रहती। आखिर संस्था की शुरूआत चित्रकला प्रदर्शनी लगा कर ही करने का फैसला किया गया।

मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं ,देवेंद्र और सुधा सुबह बिना नहाए-धोए ,सुबह-सवेरे हॉल कमरे की सफाई करने गए थे। सुधा ने कमर पर अपनी चुनरी लपेट कर झाड़ू लगाने में कोई शर्म महसूस नहीं की थी। मैंने और देवेंद्र ने मुख्य द्वार तक सफेद चूने की लकीरें खींचीं थीं। रंगोली बनाई थी मिल-जुल कर और जब तक मुंह हाथ धोने चले थे तब हमारे युवा साथी सुखविंद, विकास, पूनम व उसकी बड़ी बहन सुषमा, लोमेश, रेशम व पुनीत सज-धज कर आ खड़े हुए थे। वे सफेद लकीरों के पास खड़े थे तो हम सफेद लकीर खींचने के बाद चूने भरे हाथों से उनका स्वागत कर रहे थे। इस दृश्य पर खूब हंसी-मजाक भी हुआ। सुधा को अपनी चुनरी खोलने की सुध भी तभी आई थी।

आज सोचता हूं तो लगता है कि पहले ही कार्यक्रम में एक विभाजन की रेखा खिंच गई थी जिसकी ओर हमारा ध्यान नहीं था। इसे सिर्फ युवा वर्ग का उत्साह व जोश-खरोश मानकर हम लोग भूल-भुला गए थे।

छोटे शहर में 'रक्तदान' करने के लिए प्रेरित करने 'ब्लड डोनर्ज संस्था' आगे आ रही थी। पर कोरी बातें कितने लोग सुनते हैं? लोगों के मन से रक्तदान का डर निकालने के लिए देवेंद्र ने एक नाटक लिख डाला - रक्तदान महादान- जिसमें रक्तदान को सबसे बड़ा दान बताया गया था। हास्य से भरपूर यह नाटक धर्मराज के खाते पर आधारित था। इसकी रिहर्सल दो महीने तक चलती रही। पूनम का नृत्य भी स्वर्ग की अप्सरा के रूप में इसी में डाल दिया गया था।

फाइनल रिहर्सल हमारे ही घर में हुई। एक कमरे में पूनम का नृत्य चल रहा था तो दूसरे में नाटक और तीसरे में सुखविंद्र का भंगड़ा। तब बच्चे छोटे थे। महोल्ले वाले मिलनसार। दोपहर को जब सब कलाकारों को भूख लगी तब मेरी पत्नी ने बच्चों के साथ मिलकर रसोई में कड़ाही चढ़ा दी। सुधा ने सब्जी काटनी शुरू कर दी तो पूनम ,सुषमा बर्तन धोने लगीं। सबने मिल-बांट कर खाना खाया तो लगा था कि एक ही परिवार है जो फल-फूल रहा है। यह परिवार उस हिरावल दस्ते की तरह है जिससे शहर को ताजा हवा का झोंका मिल सकता है।

रक्तदानियों की संस्था के लिए खेले गए नाटक के बाद तो शहर में जैसे धूम मच गई थी। शुरू से ही हमारा शहर छोटा सा तो है। हर अच्छी-बुरी बात जल्दी फैलती है। कलाकार जिस गली बाजार से निकल जाते उन्हें तारीफ करने वाले मिल ही जाते। संस्था का नाम अब लोगों की जुबान पर था। उस नाटक की रिहर्सल के दौरान भी मैंने और देवेंद्र ने गौर नहीं किया था कि सारा नाटक एक तरफ और पूनम का नृत्य दूसरी तरफ रह गया था। पूनम की सज्जा में उसकी बहन सुषमा ने अनाप-शनाप खर्च करवा डाला था। नकली जेवरों के सैट के लिए हम कई दुकानों की धूल फांक आए थे। विकास और पूनम में वैसे भी कुछ खिचड़ी पकने लगी थी।

फिर हमारी संस्था पर नगर के बड़े अधिकारी की नजर पड़ गई थी। अब इतने वर्षों बाद जब यह बात याद आ रही है तब लगता है कि कहना यह चाहिए कि हमारी संस्था को बड़े अधिकारी की नजर लग गई थी। उन्होंने हमें शाम के समय कोठी पर आकर दो-चार गाने पेश करने का न्यौता दे डाला था।

मैं और देवेंद्र सोच में पड़ गए। यह कैसा न्यौता है ?हम कहानी ,नाटक ,संगीत व नृत्य को कला मानते हैं पर कला किसके लिए ?सुखविंद्र ने हमारी उलझन को उस समय तो हल कर दिया था परंतु उसका सुझाया गया हल बाद में हमारी संस्था के लिए एक हादसा साबित हुआ।

देवेंद्र हारमोनियम बजा लेता था। ढोल खुद सुखविंद्र ने संभाला था और भंगड़ा उसके दो-तीन साथियों ने। उस दिन वहां नगर के प्रमुख लोग ही ड्राइंग रूम में जाम लिए बैठे थे। समाज में उनका जो चेहरा था वह शायद ड्राइंग रूम से बाहर ही रख आए थे। यहां उन सबके अलग चेहरे हमारे सामने थे। यहां तक कि एक युवा उद्योगपति जो मुक्त हस्त से समाजसेवी संस्थाओं को दान देने के लिए मशहूर था, उस रात अपने सिर पर शराब की बोतल टिकाए 'जिंद मेरिए! हाय जिंद मेरिए' की तर्ज पर मटकता रहा और आखिरकार थक कर वहीं सोफे पर गिर गया था।

उस आदिम रात पर उन लोगों ने कलाकारों पर खुश होकर नोटों की बरखा की और देखते-देखते वे युवक जो हमारे साथ नगर की हवा बदलने निकले थे ,उनकी हवा बदल गई।

इसके बाद देश में एक बड़े रंगकर्मी को नुक्कड़ नाटक खेलते हुए मार दिया गया। पुनीत उसके नाटकों की पुस्तक ढूंढ लाया और देवेंद्र ने नए सिरे से कलाकार इकट्ठे किए। फिर रिहर्सलों का दौर उसी तरह शुरू हुआ जिस तरह प्रसव वेदना के बाद कोई स्त्री दूसरी प्रसव वेदना झेलती है। एक तरफ जहां हम उस रंगकर्मी का नाटक गांव-गांव दिखाकर हल्ला बोलने का मंत्र फूंक रहे थे तो दूसरी तरफ हमारे ही कुछ गुमराह साथियों ने अलग से संस्था बनाकर किसी के जन्म दिन तो किसी की सालगिरह पर ढोल-ढमाके के साथ कार्यक्रम देने शुरू कर दिए थे।

उस रात के बिछुड़े हुए साथी बहुत दूर निकल गए थे। सफेद -चूने से खिंची विभाजक-रेखा जब-तब आंखों में चमक उठती। कुछ मित्र हमारा मजाक उड़ाने से न चूकते। उनके कहने का लहजा यही होता कि शहर की हवा बदलना इतना आसान नहीं होता बच्चू! हर शहर में ऐसी ही हवा बह रही है। यह हवा अब उसी तरह फैल रही है जिस तरह कोई नई किस्म का प्रदूषण फैल रहा हो।

असल में आज तक वह आदिम रात नहीं भूलती। उस रात कला के नाम पर कलाकारों ने जो कदम रखे थे वे कब उन्हें कला को व्यवसाय बनाने की ओर मुड़ गए थे कि वे भी नहीं जान पाए।

धीरे-धीरे हम लोग पृष्ठभूमि में चले गए थे। जगह-जगह उन लोगों के ढोल की आवाज गूंजने लगी थी। मैं और देवेंद्र बैठते तो इसी पर चर्चा करते कि आखिर आज का युवा वर्ग कला के माध्यम से कुछ देना नहीं चाहता बल्कि पाना ही पाना क्यों चाहता है। समाज में हल्की सी 'रोशनी बांटना' नहीं चाहता बल्कि धन की चाकाचौंध 'बटोर' लेना क्यों चाहता है ?वह समाज की हवा बदलना नहीं बल्कि लोकप्रियता की हवा में उडऩा क्यों चाहता है?

अब निमंत्रण पत्र मेरे हाथ में है। उसी युवा वर्ग की संस्था ने मुझे आमंत्रित किया है। सम्मानित करने के लिए। उनके पत्र के साथ ही रील ,हां ,बिल्कुल फिल्म की रील की तरह ये सारी यादें, सारी बातें अपने आप खुलती चली गई हैं।

पत्र हाथ में थामें सोच रहा हूं कि क्या मुझे उस कार्यक्रम में सम्मानित होने के लिए जाना चाहिए ? दरअसल राजधानी से निकलने वाले एक अखबार में काम पाने पर मैं अपना पुराना शहर छोड़ आया था पर अपने हाथों संस्था के लगाए पौधे के लिए देवेंद्र से यही कह कर आया था - दुआ करो कि यह पौधा सदा हरा ही रहे।

अब उन लोगों के कार्यक्रम में जाना मेरा सम्मान होगा या अपमान? देवेंद्र क्या समझेगा? पुनीत क्या सोचेगा? शहर के लोग क्या कहेंगे?

मैं सोच रहा हूं कि उन्होंने सम्मानित करने के बहाने यह बताने का प्रयास किया है कि आपके मूल्यों का समाज में कोई मूल्य नहीं ,समाज हमें चाहता है।

पर देवेंद्र के शब्द याद आ जाते हैं कि जब तक अंधेरा रहेगा तब उससे लडऩे के लिए ,उसे दूर भगाने के लिए दीपक भी रहेगा।

मन एकाएक चीख कर कहता है-नहीं ,नहीं ,मैं यह पुरस्कार लेने नहीं जाऊंगा!!!

संपर्क - 94160-47075

'साकी' प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक एच. एच. मनरो का उपनाम है जिनका जन्म1870 में ब्रिटिश बर्मा में हुआ। उन दिनों बर्मा भारत की ही एक राजनैतिक इकाई था। इनकी मृत्यु 1916 में फ्रांस में हुई। जब 1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ तो इनकी की आयु 40 से ऊपर थी, मनरो स्वेच्छा से अंग्रेजी सेना में भर्ती हो गये। 13 नवम्बर 1916 को फ्रांसिसी जमीन पर जर्मन सेना से लड़ते हुये युद्ध के मैदान में इनका देहान्त हुआ। इस प्रकार युद्ध के क्रूर हाथों ने एक प्रतिभाशाली रचनाकार को असमय मानवता से छीन लिया।

मनरो एक नाटककार, उपन्यासकार एवं इतिहासकार भी थे, लेकिन कहानी के क्षेत्र में इनको वैश्विक स्तर पर उस्ताद का दर्जा हासिल है। द इंटरलोपर, द ओपन विण्डो, द टॉयज़ ऑफ़ पीस, द बुल, द ईस्ट विंग आदि इनकी अनेक कालजयी कहानियां हैं। इनकी कहानियों में आदमी के दंभ का प्रकृति के साथ टकराव का रोचक वर्णन मिलता है। इनकी कहानियों का अन्त पाठक को हैरान कर देने वाला होता है। इस अंक में प्रस्तुत है साकी उर्फ़ एच. एच. मनरो की विश्व प्रसिद्ध कहानी 'द इंटरलोपर' का हरियाणवी अनुवाद

- संपादक

बात जाड़्यां की एक रात की सै। कार्पेथियन पाहड़ के पुरबिया किनारे पै स्याँघणें बणां कै बिच्चो-बीच जड़ै सौ तरहां के झाड़-बोझड़े खड़े थे, एक माणस आपणी बन्दूख ताणें न्यू चुकन्ना खड़्या था जणूं किसे जंगळी पसु की निसान्नै पै आण की बाट देखर्या हो। पर जिस शिकार नै ओ इतने ध्यान तै टोह्ण लागर्या था, शिकारी हिसाब-किताब तै वा जड़तैए गल्त थी। उलरिक वॉन ग्रैडविच जिस शिकार खात्तर इस बण मैं धक्के खाण लागर्या था, ओ असल मैं एक जिन्दा-जागदा माणस था, उसका एक पड़ौसी - उसका सबतै बड्डा बैरी।

उलरिक एक बड्डा जमींदार था। खेत अर जंगळात मिल्या कै लाम्बे-च्योड़े मुर्रब्बे का मालक था। शिकार खात्तर जी-जिन्नोरां की कोए कमी नीं थी। यू जो जमा खड़ी पाह्ड़ी पै छोट्टा सा बण था, उसके खेताँ की सीम पै पड़ै था। इस बण म्हं ना तो कोए खास से जी-जिन्नोर थे, अर ना शिकार करण की कोए बडिया सी खुल्ली-डुल्ली जगहां थी। पर एक बात थी, उलरिक नै आज तक सबतै घणी रुखाळ बी इस्से हिंस्सै करी थी। जमीन के इस टुकड़ै खातर उसके दादा नै कई साल कचेहड़ियाँ मैं मुकदमा लड़्या था। अर मुकदमा जीत कै पड़ौस के एक टुच्चे से जमींदार पै तै इसका कब्जा लिया था। कचेहड़ी का फैंसला दूसरी पाल्टी ने कद्दे बी मन तै नींह् मान्या। उन्नै इस जंगळ मैं लुक-छिप के आणा-जाणा अर शिकार करणा बन्द नींह् कर्या। इन्हें बातां नै ले कै दोनूं कुणबे एक-दूसरै तै कसूत्ते कटैं थे अर आपसरी म्हं घणी जळन थी। यू बैर तीन पिढ़्ढी तै चाल्या आण लागर्या था। उलरिक पक्का खोरी था। जिस दिन तै उसनै लेण-देण सँभाळ्या था, पड़ौस की या लड़ाई उसकी निजी रंजिस मैं बदल गी थी। जै धरती पै कोए एक माणस था जिसतै उलरिक बे-हिसाबी नफरत करै था अर उसका बुरा चाह्वै था तो ओ ज्योरग जीनियम था। ज्योरग नै बी यू बैर दादालाई चीज की तरियां मिल्या था, अर ओ खुद बी उलरिक का कुछ ना कुछ लाग्गै था। ओ जाण-बूझ कै अपणे खेत की डयोळ पार करकै इस जंगळ मैं आंदा अर शिकार मार कै ले ज्यांदा।

जै इन दो माणसां का आपसी बैर रोड़ा न्हीं बणदा तो हो सकै था इब तक कोए सुलह हो ज्यांदी, या फेर झगड़ा थोड़ा-बोह्त ढिल्ला ए पड़ ज्यांदा। बाळकपण तै ए दोनूं एक-दूसरै के जानी दुश्मन थे अर जितना हो सकै था एक-दूसरै का बुरा मनावैं थे। उनती आज तक दोनूं हाथ ठा कै जै उप्पर आळै तै कुछ माँग्या था, तो बस एक-दूसरै की मौत मांगी थी। अर जाड़्यां की इस रैत नै जब सीळी बाळ का डुण्डा पाटर्या था, उलरिक अपणे नौक्कर-चाक्कर अर शिकारियाँ के टोळ नै ले कै जंगळ मैं पोंह्च लिया था। आज उसके दिमाक मैं कोए चौपाये जिन्नोर कोनी था, उसनै तो उन चोरां की टोह् थी जो उसकै बण की सीम मैं बड़ कै शिकार ठा कै लेज्या करदे।

तुफ्फानी रात नै बी कित्ते लुक कै बैठण की बजाय, मृगां

की डार न्यू भाज्दी फिरै थी जणूं कोए पाच्छै लागर्या हो। जिन जिन्नोरां का यू सौण का टैम था, उनका बी पासणा पाटर्या था। बण मैं कोए ना कोए तो जरूर था। उलरिक नै हिसाब सा ला लिया के या गड़बड़ बण के कुणसै हिंस्सै म्हं थी।

उलरिक नै अपणे साथियां तै चुक्कन्ना रहण की कह् कै वैं सारे पाहड़ की चोटी पै बैठ्या दिए, अर खुद तळे खाई म्हं उतरग्या। झाड़-बोझड़े अर रुक्खां मैं को उळझदा-लिकड़दा ओ घणी ए तळै पोहंचग्या। उसका पूरा ध्यान बस चोर-घुसपैठियाँ की आवाज कानी था।

बस आज की रात, कुक्करे बी, इस अन्धेरै मैं, इस खाली सुनसान जगाँह् मैं, ज्योरग जिनियम उसकै स्याम्मी आजै - बस या एक बात फिरकी की तरियां उसके दिमाग मैं चक्कर काट्टण लैग री थी। चाल्दे-चाल्दे जब उसनै एक मोटे से रूख का चक्कर काट्या, तो उलरिक उस दुसमन कै ठीक स्याम्मी खड़्या था, जिसनै ओ टोह्ण लागर्या था।

कुछ हाण तो दोनूं बैरी एक-दूसरै नै घूरदे ए रह्ए, कुणसा ए बी कुच्छ नींह् बोल्या। दोनुआँ कै हाथां मैं बन्दूख थी, काळजै मैं नफरत थी, अर उस्तै बी ज्यादां दिमाग म्हं खून सवार था। एक लाम्बे अर्से तै दबी पड़ी इच्छा नै पूरी करण की घड़ी आ गी थी। पर एक चौधरी, खानदानी आदमी स्याम्मी आळै नै बिना कुछ कह्ए-सुणे, बिना मौका दिए, न्यू गोळी कुक्कर मार दे ! फेर तो इज्जत ए के रह्जेगी !

फेर इस्तै पहल्यां उन मैं तै कोए बी, कुछ बी करदा, उप्पर आळै का कहर उन दोनुआँ पै टूट पड़्या। एकदम कसूती तेज बाळ चाल्ली, अर ओ भारी रूख टूट कै अरड़ांदा होया उनकै उप्पर ए आ पड़्या। कुणसै ए नै बी भाज्जण या बचण का कोए मौक्का नींह् मिल्या।

चौधरी उलरिक वॉन ग्रैडविच जमीन पै पसर्या पड़्या था। एक हाथ सुन्न होया उसकी छात्ती कै तळै दबर्या था, अर दूसरा बी उतना ए अलाचार डाळियाँ मैं उळझ्या पड़्या था। दोनूं की दोनूं टाँग बी भारी तणै कै ठीक नीचै फँसी पड़ी थी। उसके गोड़्यां तक के शिकारी जूत्यां नै ज्युकर-त्यूकर उसकी टांग बचा राखी थी। जै उसकी टूट-फूट उतनी बुरी बी नींह् थी, जितनी के वा लागै थी - एक बात साफ़ थी के बिना किसे और के सहारे कै ओ अपणी जगहाँ तै हिल बी नीं सकै था। एक ढाळी नै बुरी तरियां मुंह् की खाल छील दी थी लूह् की संडीर नै आँख बी ढक ली थी। नुकस्यान का जायज़ा लेण खात्तर उसनै कई बै आँख खोलणी अर बंद करणी पड़ी।

उसकै लवै, कोए एक हाथ दूर ज्योरग जिनियम लम्बा पसर्या पड़्या था। जिन्दा था अर पंजे मारै था। ओ बी न्यू ए अलाचार दब्या पड़्या था। दोनुआँ कै चुगर्दै रूख के टुट्टे हौड़ ढाळे-ढाळियाँ का कुंद पसर्या पड़्या था।

एक औड़ तो उलरिक कै मन म्हं बचण होण की खुसी थी, उसने उप्पर आळै का श्यान बी मान्या; दूजी औड़, पेड़्डै कै तळै बिन्ध्या होण की खीज उस्तै बी घणी थी। उसकै मुंह् तै एक-आध आच्छी-भुंडी गाळ बी लिकड़ी। ज्योरग की आँख्यां पै को लूह् की धार बंध री थी। ठीक तरियां देख बी नींह् सकै था। उसनै हाथ -पाँ मारणे छोड़ कै अपणे कान लाए, अर फेर जळेवै मैं गंदी सी हाँसी हाँस्दा होया बोल्या:

"आछया रै, बैरी इब तक जिन्दा है। मरैं बी क्यूँ था ! पर चालो फंस्या तो, अर तगड़ा फंस्या। आहा, मजा आग्या ! उलरिक वॉन ग्रैडविच अपणै कब्जाए होए जंगळ कै ए फँदै मैं फंसग्या। जमा ठीक बणी। ठीक न्या होया सै तेरी गैल।"

न्यू कह्कै ज्योरग फेर जोर तै हाँस्या। उसकी हाँसी में ईर्ष्या थी, खिल्ली थी, जळैवा था, अर जंगळीपन था।

'यु जंगळ मेरा आपणा सै,' उलरिक गुर्रा कै बोल्या, 'इसका खसम, असली मालक मैं सूँ ! चोर, आज तूं पाड़ पै थ्याग्या। थोड़ी सी हाण मैं जद मेरे आदमी आकै मन्नैं काढैंगे, तु हाथ जोड़ कै न्यू मनावैगा के तेरी हाल्लत इतनी बुरी नींह् होंदी जितनी के ईब है, अर इब्बे और होणी है। पड़ोसी की जमीन पै चोरी करै, तन्नै थोड़ी सी बी सरम कोनी आई !'

थोड़ी सी हाण ज्योरग चुप रह्या, फेर अराम तै बोल्या:

'पर तेरे आदमी आकै तेरा काढ़ैंगे के? तैरै मैं काड्ढ़ण जोगा कुछ बचदा ए कोनी । मेरे बी माणस जंगळ मैं ए सैं, ठीक मैरै पाच्छै-पाच्छै। पहलां वैं आवैंगे अर मन्नै काढ लेवैंगे। जब मन्नै खींचण खात्तर वैं इस तणै नै धक्कावैंगे, यु तेरी छाती पै को जैगा। जब तक तेरा टोळ उरैं आवैगा, रूख तळै दबी बस तेरी लास ए पावैगी। तेरी मौत पै दुख का एक रस्मी सा संदेसा मैं तेरे घरआळां तक बी जरूर पुंचाउंगा।'

'या बात तन्नै ठीक बता दी,' कड़कड़ाकै उलरिक बोल्या, 'मन्नै अपणे आदमियाँ तै पहल्यां ए हुकम दे राख्या था के मैरै तै दस मिन्ट पाच्छै चालैंगे। जब वैं मन्नै काढ़ैंगे, मैं तेरी बात याद राखूंगा। अर जब तूं बिराणे खेतां मैं ठाईगिरै की मौत मरैगा, मन्नै नींह् लाग्दा मैं तेरे घरां तस्सली का कोए झुठ्ठा-मुठ्ठा संदेसा बी बिझवाऊंगा।'

'बोह्त बढिया!,' ज्योरग के बोल मैं जहर भर्या था, 'शाब्बास ! आज या लड़ाई मौत पै ए जा कै रूकैगी। तूं, मैं, अर दोनुआं के शिकारी; और किसै नै बीच मैं नींह् आणा। तेरा टेम

आ लिया। आज तेरी मौत नै उप्पर आळा बी नीं टाळ सकदा, उलरिक वॉन ग्रैडविच !'

'या दुर्गति तो आज तेरी होणी है ज्योरग जिनियम, मुरगीचोर, लाक्कड़चोर, ठाईगिरे !'

दोनुआँ की आवाज मैं कड़वापण था - उस माणस का कड़वापण जिसनै आपणी हार आंख्यां आगै खड़ी दिखदी हो। दोनूं आच्छी ढाळ जाणैं थे के उसके शिकारियां नै आण मैं कितनी ए बी हांण लाग सकै थी। या तो बस मौक्कै की बात थी के कुणसा टोळ पहलम पोंह्चअगा।

दोनुआँ की समझ मैं आग्या था के जिस तरियां वैं दबे पड़े थे, लिकड़न का सारा जत्तन बेकार था। इब टिकाई तै पड़े थे। उलरिक की एक बांह् थोड़ी सी घूम सकै थी। उसनै अपणे कोट की बाहरली गोह्ज मैं तै दारु की सिस्सी काढ ली। सिस्सी काढैं पाछै उसकै आपणी हाल्लत समझ म्हं आई। घा गहरे थे, पर स्यामी बैरी पड़्या था, कराह् बी नीं सकै था। इब्बे जाड्डा ठीक-ए-ठाक था, अर बरफ बी पड़नी सरु कोनी होई थी। पर उलरिक नै, जो इस उजाड़ जंगळ मैं बुरे-हाल चोट खाएं पड़्या था, या दारु अमरत बरगी दिक्खै थी। सिस्सी का ढक्कण खोल्लण मैं ए उसका सारा जोर लाग लिया। खैर, दो-च्यार घूँट भीत्तर गए तो उसकी ज्यान मैं ज्यान आ गी। स्याम्मी पड़्या माणस बैरी ऐ सही, पर टूट्या-फूट्या तो ओ बी पड़्या ए था। उलरिक की आंख्यां मैं दया की एक झाल सी आई।

'जै मैं या सिस्सी तेरै कानी फैंकूँ, तु इसनै पकड़ सकै सै के?,' चाणचक उलरिक बोल्या, 'इस्मैं हाथ की काढी होइ बढिया आळी दारु है। पी कै देख, चैन सा पड़ैगा। चाल आ दोनूँ मिल कै पीवैंगे, चाह्ए आज की रात आपणै दोनुआँ मैं तै एक की आखरी ए रात क्यूँ ना हो।'

'ना, मन्नै कुछ दिखण ए कोनी लागर्या। मेरी दोनूं आँख्यां मैं लहू कट्ठा हो कै जमग्या सै,' ज्योरग बोल्या, 'अर न्यू बी, बैरी गैले बैठ कै दारु के पी जावै ।'

कुछ हाण उलरिक चुप रह्या अर पड़े-पड़े तेज बाळ की सिट्टी सुणदा रह्या। उसकै मन म्हं एक नवी बात आई, एक नवा ख्याल जो दिमाक के खेत मैं घुण्डयाँ की ढाळ फुटणा सुरु होग्या। जितनी बार बी उसनै थोड़ी सी दूर पड़्या ओ माणस देख्या जो होठ भिच्चें अपणे दरद तै लड़न लागर्या था, उतना ए पक्का उसका यु ख्याल बी होंदा गया। जिस हिसाब तै उसके दरद अर थकोट बद्धण लाग रे थे, उस्से हिसाब तै उसकै भीत्तर कदीमी जमी ह्ओड़ नफरत पिंघळण लाग री थी।

'रै ओ भाई,' उलरिक नै बोलणा सरु कर्या, 'जै तेरे आदमी पहलम आजैं, तुं वा करिए जो तेरै पै बणै। उस्मैं कुछ गल्त कोनी। जड़ै तक मेरी बात सै, मेरा मन बदलग्या। सारी उमर बीतगी, आपां इस छोटी सी दो कोड़ी की बणी पै राक्कसां की ढाळ लड़दे आण लाग रै हाँ। यु बण, जड़ै मड़ी सी तेज बाळ मैं रूख बी सीद्दे नीं खड़े रह् सकदे, उरैं माणस की के मजाल। आज आड़ै पड़े-पड़े मेरै तो यू ए ख्याल आया - के आपां दोनूं ए बौळै थे। जिंदगी म्हं एक ड्योळ अर उसके रोळै तै बोह्त बड़ी बात सैं। देख प्यारे, जै तन्नै मंजूर हो, अर तुं बी इस आग नै बुझाण म्हं मेरा साथ देवै, मैं - मैं न्यू कहूं, चाल दोनूं याड़ी बण कै रवाँगे।'

ज्योरग जिनियम चुप पड़्या था। उलरिक नै लाग्या के ओ लूह् बह्-बह् कै सुन्न हो लिया था। कई हाण पाच्छै ज्योरग नै मरी -मरी आवाज मैं बोलणा सरु कर्या।

'सारे गाम-घुआंड सुन्न रह्जैंगे, जब आपां दोनूं घोड़्यां पै चढकै कट्ठे बजार मैं जावांगे। आज तक किस्से नै बी एक जिनियम अर ग्रेडविच को भले माणसां की ढाळ बतळांदे होए नींह् देख्या होगा। जै आज की रात आपणा रौळा ख़तम हो जै, तो आपणे खेताँ म्हं काम करण आळे माणस अर लुगाई बी कितने सुख तै रवैंगे। जै आपां दोनूं भाईचारा राखैंगे, फेर किसै बिराणै आदमी की तो हिम्मत ए कोनी। सारा इलाका सुख तै बसैगा। ... नए साल की रात नै तुं मेरी झुपड़ी मैं सोइए, अर दिन मैं दोनूं तेरै महल मैं खाणा-पीणा करैंगे। ... मैं तेरी जमीन पै आकै सिरफ उस दिन बन्दूख चलाऊंगा, जब तुं शिकार खेल्लण खात्तर मेरै घरां खुद न्योंदा भेजैगा। तुं बी मेरै धोरै आया करिए, म्हारै जोह्ड़ आळै खेत मैं शिकारां की कोए कमी कोनी। बीस-बीस कोस ताँई कोए रौळा नींह् कर सकदा जै आपां दोनूं ना लड़ां तो। ... तेरै-मेरै रिस्तै म्हं नफरत तै न्यारा और बी कुछ हो सकै, या बात तो कदे मन्नै सोच्ची बी कोनी थी। पाछले आद्दे घंटे मैं मेरा बी मन और सा होग्या। अर फेर तनै, इस घड़ी म्हं, मैं दारू नै टोक्या ... उलरिक वॉन ग्रैडविच, तेरी बात सिर-माथ्थै ... मन्नैं तेरी यारी मंजूर।'

चुपचाप दोनूं सोच्चण लाग गे के इस दादालाई रौलै का यु जो चाळेपाड़ निबटारा होया सै, इस्तै जिंदगी कितनी समर जै गी। जंगळ मैं बाळ का इब बी न्यू ए खखाटा ऊठर्या था। उरै पड़े-पड़्यां नै इब तो बस या ए आस थी के कुणसी ए एक टोळी टोह्दे -टुहांदे ओड़ै तक पोंह्च जै गी अर दोनुआँ नै काढ लेगी। दोनूं मन -ए-मन बस एक ए बात मनावैं थे के उसकी टोळी पहलम पोंह्चे अर उस बैरी की मदद करण का मौका मिलै जो इब प्यारा बण लिया था।

बाळ थोड़ी सी नरम पड़ी तो उलरिक बोल्या, 'थोड़ी सी स्यांती होइ सै, इब आपां नै मदद खात्तर रुक्के मारणे चाहिएं।'

'इन झाड़-बोझड़्याँ मैं आवाज दूर तक तो जाणी नीं,' ज्योरग बोल्या, 'फेर बी कोसिस करण म्हं के हरजा।'

दोनुआं नै शिकारियां की बोल्ली मैं लाम्बी किलकी मारी।

'एक बै फेर, कट्ठे !,' जय्ब कोए जबाब नीं आया तो उलरिक बोल्या।

'कुछ नीं सुणदा, एक इस स्साळी बाळ की घूं-घूं सै बस,' ज्योरग नै खिज कै कह्या।

थोड़ी सी हाण सब चूं-चाँ-चप, फेर उलरिक नै खुस हो कै सिट्टी मारी।

'कोए सै जो आण लागर्या है। ठीक उस्सै राह्ई जुणसी मैं आया था।'

दोनुआँ नै सारा जोर ला कै फेर रुक्का मार्या।

'उन्नैं आपणी आवाज सुणली । वैं रुकगे । उन्नैं आपां देख लिए साँ। वैं पाह्ड़ी पै तै तळै भाज्दे आण लाग रे सैं, आपणे कानी,' उलरिक जोर तै चिख्या।

'कितने जणे सैं,' ज्योरग नै पुच्छया।

'साफ-साफ नीं्ह दीख रे,' उलरिक ने कह्या, 'नौ या दस तो होंगे।'

'फेर या टोळी तेरी सै,' ज्योरग बोल्या, 'मेरी गैल तो बस सात जणे आए थे।'

'वैं पूरा आंधा ला कै भाज्दे आण लाग रे सैं, इनका जोस तो देख !,' उलरिक नै अजीब सी ढाळ कह्या।

'तेरली ए टोळी सै ना ?,' ज्योरग नै पुच्छया। '... रै, तेरे ए आदमी सैं ना ?,' फेर ज्योरग नै हड़बड़ा कै पुच्छया जब उलरिक का कोए जबाब नीं आया।

'ना, मेरे कोनी,' उलरिक नै बेतुकी सी हाँसी हाँस्दे होए कह्या। उसकी हाँसी मैं दुख, अलाचारी, अर डर का बेहिसाबा सा मेळ था।

'ओ बाब्बू, यैं फेर सैं कूण ?,' ज्योरग नै घबरा कै पुच्छया।

'असली मालक।'

ज्योरग नै पूरा जोर ला कै अपणी आँख खोल ली अर उन नैं देखण लागग्या जिन नैं देख कै उलरिक नै अपणी आँख बंद कर ली थी।

'भेड़िये।'

सम्पर्कः एसोसिएट प्रोफेसर, अंग्रेजी-विभाग,
द्रोणाचार्य कालेज, गुडगांव,
मो. - 9729751250

ग़ज़ल

राजकुमार जांगड़ा 'राज'

1

मुश्किलों में भी अब वो दम नहीं होता,
इसीलिए कुछ खोने का ग़म नहीं होता।
चल पड़े हैं जो मंजिल पर जरुर पहुंचेंगे
रोक ले इन्हें, रास्तों में वो दम नहीं होता।
भूख व बेकारी के सिवा कुछ दे न सके जो
रहने के लायक कभी वो हाकिम नहीं होता।
मन्दिर मस्जिद में ही उलझाकर रखना इनको
बेरोजगारों से बड़ा भी कोई बम नहीं होता।
बदल जाए जो हवा का रुख देखकर,
सच तो ये है, वो कभी हमदम नहीं होता।
उम्रभर कौन साथ चलता ज़माने में,
साथ तो कुछ लम्हों का भी कम नहीं होता ।
छलक जाती हैं कई बार ये आँखें यूं भी,
सबब हर बार इनका, कोई ग़म नहीं होता ।
मिल गया होगा कोई हमसें बेहतर उनको
वरना ताल्लुक़ हमारा यूं कम नहीं होता।
अहसासों का जिंदा होना ही जरूरी है
वरना ऐसे रिश्तों में कभी दम नहीं होता।
होड़ सी लगी है नौकर और मालिक हो जाने की
ये वो झगड़ा है 'राज' जो कभी कम नहीं होता।

2

रोज-रोज यूँ ही ना रुलाया कर ए जिंदगी,
कभी तो माँ सी भी बन जाया कर ए जिंदगी।।
जरुरी नहीं सबके अपने ख्याल रखने वाले हों,
तन्हा लोगों को भी सम्भाल जाया कर ए जिंदगी।।
रंगीनियाँ ही तो सब कुछ नहीं हैं इस जहां में,
मर मर के जीने वालों को भी मिल जाया कर ए जिंदगी ॥
जेठ की दोपहर सी गर्म गुजरी है जिन पर,
सावन की रिमझिम भी बरसाया कर ए जिंदगी ॥
ख्वाब नहीं देखते हैं 'ए राज' वो महलों के,
रोटी भी उनकी छीन के ना ले जाया कर ए जिंदगी ॥

संपर्क - 9416509374

रात

□ सुशांत सुप्रिय

शाम ढल गई थी। रात का पंछी पंख पसारने लगा था। पिता अपने ढाई साल के बच्चे के साथ सड़क पर टहल रहा था। पश्चिमी क्षितिज पर छाए गुलाबी बादलों में प्रकृति का चित्रकार अब काला रंग भर रहा था।

"पापा, रात में अँधेरा होता है ? "

"हाँ, बेटा। "

"पापा, रात में कुछ नहीं दिखता ? "

"हाँ, मेरे बच्चे। "

इस घटना के कुछ दिनों बाद बच्चा अपने खिलौने से खेल रहा था। खेलते-खेलते उसका खिलौना संदूक के नीचे चला गया। पिता पास बैठा अख़बार पढ़ रहा था।

"पापा, पापा। मेरा खिलौना अंदर चला गया है। निकाल दो। "

"बेटा, नीचे झुको और हाथ अंदर डाल कर खिलौना निकाल लो। अब तो आप बड़े हो रहे हो। शाबाश। "

बच्चा ज़मीन पर लेटकर संदूक के नीचे देखने लगा। पर उसने अपना हाथ अंदर नहीं डाला। उसकी आँखों में भय की महीन रेखा उभर आई।

"पापा, अंदर रात है। अँधेरा है। "

पिता यह सुनकर मुस्कराया। वह बच्चे को खिडकी के पास ले गया।

"बेटा, देखो। अभी दिन है, रात नहीं। सूरज आकाश में चमक रहा है। चारों ओर रोशनी है। "

फिर वह बेटे के साथ ज़मीन पर बैठकर झुका और उसे संदूक के नीचे दिखाते हुए बोला"अंदर अँधेरा तो है पर रात नहीं है, बेटा। ज़रूरी नहीं कि जहाँ अँधेरा हो, वहाँ रात भी हो। "

बच्चे को उसका खिलौना मिल गया था। वह खेलने में मस्त हो गया।

समय का रथ अबाध गति से चलता रहा।

तीस साल बीत गए। अब बेटा बड़ा हो गया था। वह नौकरी करने लगा था। उसकी शादी हो गई थी और उसका एक बच्चा भी था। पिता अब बूढ़ा हो गया था। बुढ़ापा अपने-आप में ही बीमारी होती है। ऊपर से उसकी आँखों में मोतियाबिंद उतर आया था। सब धुँधला-धुँधला लगता था। आँखों के आगे अँधेरा -सा छाया रहता था। वह पिछले छहमहीने से बेटे से कह रहा था,"बेटा, मुझे किसी डॉक्टर को दिखा दो। मेरा ऑपरेशन करवा दो। ठीक से दिखता नहीं है। कई बार ठोकर खा कर गिर चुका हूँ। घुटने छिल गए हैं। धोती फट गई है। आँखों की रोशनी बुझती जारही है ... "

पर बेटा अपने जीवन में व्यस्त था। वह एक बहु-राष्ट्रीय कंपनी में मैनेजर था। दिन कंपनी के नाम था। रात बीवी-बच्चे के नाम थी। पिता के लिए उसके पास समय नहीं रह गया था। पिता घर में पड़े किसी फ़ालतूसामान-सा उपेक्षित जीवन जी रहा था।

एक दिन बेटा हमेशा की तरह देर-शाम दफ़्तर से घर पहुँचा। अपने बेड-रूम में जाते हुए उसने पिता के कमरे में झाँका। वहाँ अँधेरा था। उसने ध्यान से देखा। पिता अँधेरे में ही बिस्तर पर बैठा था। उससे रहा नहींगया -- "क्या, पिताजी ! शाम ढल चुकी है। रात हो गई है। और आप कमरे में अँधेरा किए बैठे हैं। कम-से-कम उठ कर लाइट तो जला ली होती। यह इंसानों के रहने का घर है। शाम के समय घर में बत्ती नहीं जलाना अपशकुन माना जाता है। "और इतना कह कर उसने कमरे की बत्ती जला दी। कमरे में उजाला हो गया।

पिता ने चाहा कि वह कहे -- "बेटा, मेरा सूरज तो तू था। जब तूने ही मुझसे मुँह मोड़ लिया तो मेरे जीवन में कैसी रोशनी ? तूने कमरे में तो उजाला कर दिया पर मेरे भीतर जो अँधेरा छा गया है, मेरे जीवन में जो रात उतर आई है, उसे कौन-सा बल्ब दूर करेगा ? "

पर बेटा तब तक अपने कमरे में लौट गया था। अचानक पिता तीस साल पीछे चला गया जब बेटे का खिलौना संदूक के नीचे चला गया था और बेटे ने उससे कहा था -- "पापा, अंदर रात है, अँधेरा है। "उस दिन उसने बेटे को समझाया था -- "बेटा, ज़रूरी नहीं कि जहाँ अँधेरा होता है, वहाँ रात भी हो। "

पर आज उसे लगा कि शायद तब बेटे ने ठीक कहा था। जहाँ अँधेरा होता है, वहाँ रात भी होती है। उसकी आँखों में अँधेरा भरा हुआ था। और उसके मन में एक अंतहीन रात उतर आई थी। पर यह कैसा अँधेरा था, यह कैसी रात थी जिसमें उसे अपना भूत और भविष्य -- सब साफ़-साफ़ दिखाई देरहे थे ?

सम्पर्क - 8512070086

देस हरियाणा के अंक 15-16 में बीच बहस कालम में आरक्षण के मुद्दे पर बहस आंमत्रित की थी, जिस पर यहां राजेंद्र चौधरी व धर्मवीर ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं,जो इस बहस को समृद्ध करते हैं। आरक्षण पिछले कुछ समय से भारतीय राजनीति, समाज व मीडिया पटल पर मुख्य सवाल की तरह से उभरकर आ रहा है, जिसके बहुआयामी असर पड़ रहे हैं। कभी यह समाजिक न्याय के तौर पर आता है तो कभी मूल समस्या से ध्यान भटकाने के लिए। इस मुद्दे पर आपके विचार आंमत्रित हैं। जिंहें इन पन्नों पर प्रकाशित किया जाएगा -सं.

सवाल केवल आरक्षण की ज़रूरत का नहीं, वर्तमान आरक्षण व्यवस्था की समीक्षा का भी है

□ **राजेन्द्र चौधरी**

देस हरियाणा के अंक 15-16 में 'बीच बहस में' आरक्षण पर विस्तृत चर्चा की गई है। यह बहस स्वागत योग्य है और आगे बढ़ाई जानी चाहिए। आरक्षण पर पहले दो लेखों ('मनु ने बोए आरक्षण के बीज' और 'आरक्षण: पृष्टभूमि और विवाद') काफी तथ्य परक हैं परन्तु एक तरफा भी हैं। इस में कोई विवाद नहीं है कि मनु ने आरक्षण के बीज बोए थे पर आज सवाल केवल इतना नहीं है और न ही केवल आरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का है। आज सवाल आरक्षण व्यवस्था की समीक्षा का भी है। क्या आज भारत में जैसे आरक्षण लागू किया गया है उस में सुधार की ज़रूरत और गुंजाइश है या नहीं? विवाद केवल आरक्षण की ज़रूरत पर नहीं है अपितु मौजूदा आरक्षण व्यवस्था की समीक्षा, उस में सुधार की ज़रूरत पर भी है। इन दोनों लेखों में इस दृष्टि से बिल्कुल कोई चर्चा नहीं है। योगेन्द्र यादव का पत्र अवश्य इस का अपवाद है जिस में आरक्षण के वर्तमान तौर तरीकों पर आलोचनात्मक नज़र है पर मार्च 2016 में जारी इस पत्र में उठाए गए प्रश्नों का अन्य दो लेखों में कोई एहसास नहीं है। इस अंक में दो और आलेख फरवरी 2016 में हुये जाट आरक्षण आंदोलन की जांच पर नागरिक समाज की रपट से लिए गए तथ्यात्मक अंश हैं। (आयोग की विस्तृत रिपोर्ट https://archive.org/search.php?query=janayogharyana पर उपलब्ध है। नागरिक समाज की इस रिपोर्ट के समीक्षात्मक हिस्सों से कोई अंश प्रकाशित नहीं किया गया।

सब से पहले एक महत्वपूर्ण तथ्यात्मक भूल सुधार। देस हरियाणा के उपरोक्त अंक के पृष्ठ 38 पर इस सवाल पर चर्चा है कि "क्या आरक्षण दस साल के लिए ही किया गया था?' और यह कहा गया है कि 10 साल की सीमा केवल राजनैतिक आरक्षण के लिए थी। यह सही नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पिछड़ी जातियों के आरक्षण की वैधता पर दिये गए निर्णय में स्पष्ट आदेश हैं कि पिछड़ी जातियों को मिलने वाले आरक्षण की कम से कम 10 साल बाद समीक्षा की जानी चाहिए। यह व्यवस्था कानूनी तौर पर लागू होने के बावजूद आज तक ऐसा नहीं किया गया है। यह तथ्य भर वर्तमान आरक्षण व्यवस्था की समीक्षा की ज़रूरत को रेखांकित करता है।

इस बहस को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से 2017 में प्रकाशित इस लेखक की पुस्तिका "हरियाणा में फ़रवरी, 2016 के जाट आरक्षण आंदोलन का एक मूल्यांकन- न 35 बिरादरी, न जाट महान" के एक हिस्से "आरक्षण के सवाल पर एक बार फिर" के संपादित अंश यहाँ प्रस्तुत हैं।

जाट (और पटेल इत्यादि) समुदाय के पास एक सीधा सा तर्क है। उन के समकक्ष जातियों को आरक्षण का लाभ मिल सकता है तो उन को क्यों नहीं। हरियाणा में यादव (अहीर) लगभग जाटों जैसे ही हैं। हरियाणा के एक हिस्से का प्रचलित नाम अहीरवाल है और इस क्षेत्र में अहीर/यादव एक प्रमुख जाति है। ये इस इलाके में भूमि के मालिक हैं और यहाँ की राजनीति इन के इर्द-गिर्द घूमती है। जब इन को आरक्षण का लाभ मिल सकता है तो एक आम जाट को यह समझना मुश्किल हो जाता है कि उसे क्यों इस से वंचित रखा जा रहा है। अगर दिल्ली के जाट पिछड़े हैं तो पड़ोसी गाँव के जाट, जिन से दिल्ली वाले जाटों का रोटी-बेटी का बरसों पुराना रिश्ता है, क्यों पिछड़े नहीं हैं?

आरक्षण की लगभग हर नई माँग उनकी समकक्ष जातियों को मिले आरक्षण से पैदा होती है। इस तथ्य को आम तौर पर नज़रअंदाज़ किया जाता है। आरक्षण की माँग करने वाले भी किसी जाति विशेष से सीधे-सीधे टकराव टालने की नज़र से औपचारिक रूप से इसे रेखांकित नहीं करते, परन्तु ज़मीनी बातचीत में यही तुलना सब से मज़बूत तर्क साबित होती है।

आरक्षण के दो अलग-अलग कारण बताए जाते हैं - भेदभाव और पिछड़ापन। परन्तु ये दो कारक समतुल्य नहीं हैं। पिछड़ेपन, ग़रीबी या अभाव का कारण भेदभाव भी हो सकता है परन्तु यह इस का आवश्यक तत्व नहीं है। देश के कई इलाके ही पिछड़े हैं, फिर पिछड़े इलाके के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भी काफ़ी अन्तर होता है। छोटे शहर और कस्बे गाँवों से आगे हैं तो महानगरों से पिछड़े हैं। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले तथाकथित 'सवर्ण' जातियों के बच्चे प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने वाले अपने जाति भाई/बहनों से पिछड़ जाते हैं। तो क्या इस पिछड़ेपन को दूर करने के लिए जाति/समुदाय और लैंगिक आरक्षण के साथ-साथ इन सभी श्रेणियों के लिए भी कोटा होगा? बिल्कुल नहीं। पिछड़ेपन के वस्तुनिष्ठ पैमाने को आधार बना कर उस के लिए अतिरिक्त अंकों की व्यवस्था की जा सकती है जैसे कि सांस्कृतिक एवं खेल की उपलब्धियों के लिए किया जाता है। पिछड़े क्षेत्रों या समुदायों में शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष तरह के प्रोत्साहन दिये जा सकते हैं जैसे कि घुमंतू समुदायों के लिए किया जाता है। लेकिन 'मुआवज़ा' अंकों के माध्यम से पिछड़ेपन से निपटना भी अपवाद-स्वरूप होना चाहिए और इस का आधार ऐसा वस्तुनिष्ठ होना चाहिए कि जिस में हेरा-फेरी की गुंजायश बहुत कम हो। हर तरह की असमानता से न तो आरक्षण के माध्यम से और न ही 'मुआवज़ा'-अंकों के माध्यम से निपटा जा सकता। इस के लिए तो समता को लक्ष्य मान कर असमानता को सीधे-सीधे ख़त्म करने के प्रयास करने चाहिएँ। असमानता के प्रभावों से निपटने तक सीमित रहने से काम नहीं चलने वाला। हमारे यहाँ तो तथाकथित 'अगड़ी' जातियों के बीच भी अलगाव रहता है। प्रत्येक जाति या उपजाति अपने को अन्य से श्रेष्ठ (एवं इस के साथ ही, हालाँकि यह अतार्किक है, अपने आप को शोषित-पीड़ित भी) मानती है और शादी-ब्याह के मामलों में आम तौर पर अपनी जाति तक सीमित रहती है। आरक्षण का उद्देश्य जातियों के अलगाव को बनाए रख कर जनसंख्या के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व देने का भी नहीं है क्योंकि नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण का कानूनी आधार '*आनुपातिक*' प्रतिनिधित्व नहीं, अपितु '*पर्याप्त*' प्रतिनिधित्व देना है। इस लिए आरक्षण जातिवादी विभेद ख़त्म करने की दिशा में एक तात्कालिक उपाय मात्र है। यह एक अपवाद, एक संकटकालीन उपाय है। आरक्षण हर तरह के पिछड़ेपन या असमानता से निपटने का उपाय नहीं हो सकता।

एक दिलचस्प तथ्य यह है कि अनुसूचित जातियों में शामिल किए जाने के लिए पिछले बरसों में कोई आन्दोलन नहीं उठा है। आन्दोलन केवल ओ.बी.सी. या पिछड़ी जाति (तकनीकी रूप से वर्ग) में शामिल किए जाने या अनुसूचित जनजाति में शामिल होने के लिए हुए हैं। स्पष्टतया छुआछूत से पीड़ित अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति इतनी नीची है कि कोई और समुदाय उन के साथ जुड़ना नहीं चाहता। परन्तु अन्य पिछड़ा वर्ग या यहाँ तक कि जनजातियों के साथ ऐसा कोई 'कलंक' नहीं जुड़ा है, इसलिये उन में शामिल होने की माँग बार-बार उठती रहती है। इस तथ्य से ही यह साबित होता है कि अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण का विस्तार भेदभाव की सीमा से कहीं परे चला गया है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य है। हर राज्य के लिए राज्य और केन्द्र के लिए स्वीकार्य पिछड़ी जातियों की सूची भी अलग हैं। यानी सम्भव है कि एक जाति राज्य सरकार की नज़र में पिछड़ी जाति हो लेकिन उस राज्य की केंद्रीय सूची में वह पिछड़ी जाति न मानी जाये। इन सब बातों के चलते ही न केवल हरियाणा अपितु देश भर में इस विचार को बल मिला है कि आरक्षण का कोई ठोस आधार नहीं है और राजनैतिक जुगाड़ या शक्तिप्रदर्शन के ज़रिये इसे हासिल किया जा सकता है।

लेकिन अगर किसी एक समुदाय या समूह को व्यापक पैमाने पर, संस्थागत रूप में भेदभाव और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ता है तो क्या होगा? इस मामले में, उस समुदाय को निश्चित रूप से आरक्षण की ज़रूरत होगी। पूर्वाग्रह एवं संस्थागत भेदभाव के मामलों में बराबरी का मुक़ाबला होने की संभावना ही नहीं रहती। संस्थागत कारणों से समान उपलब्धि और योग्यता होने के अवसर नहीं रहते और पूर्वाग्रह के चलते समान उपलब्धि होने पर भी समान अवसर नहीं मिल पाते। पूर्वाग्रह जाति, रंग और लिंग आधारित हो सकता है। ये पूर्वाग्रह केवल मानसिक नहीं होते, अपितु इन का ठोस आधार सामाजिक-आर्थिक ढांचे में होता है। इन पूर्वाग्रहों का इतिहास भी लम्बा होता है। जब यह पूर्वाग्रह व्यापक और गहरा हो, तब, और केवल तब, आरक्षण का औचित्य बनता है। और अगर यह भेदभाव जाति-आधारित है तो आरक्षण भी जाति-आधारित ही होना चाहिए।

इस के साथ ही, किसी एक नीति, जैसे आरक्षण, का एक आधार और एक जैसी संरचना होनी चाहिए; अन्य परिस्थितियों

के लिए अन्य नीतियाँ बनाई जानी चाहिएँ। इस संदर्भ में अनुसूचित जाति/जनजाति और ओ.बी.सी. आरक्षण के ही भिन्न-भिन्न प्रावधान कुछ गंभीर ख़ामियों की ओर इशारा करते हैं। ओ.बी.सी. कोटा हरियाणा में दो हिस्सों में बँटा है लेकिन अनुसूचित जाति के कोटे को हिस्सों में बांटने का प्रावधान हरियाणा में कुछ साल तक लागू होने के बाद ग़ैर-कानूनी घोषित हो गया है। ओ.बी.सी. आरक्षण में क्रीमी लेयर की अवधारणा है, जब कि अनुसूचित जाति/जनजाति के आरक्षण में ऐसी कोई अवधारणा नहीं है। अगर इस अन्तर का कोई औचित्य है, तो हमें इस की कहीं चर्चा नहीं मिली। यह सच है कि वित्तीय या व्यावसायिक सफलता से ही सामाजिक भेदभाव ख़त्म नहीं हो जाता और अनुसूचित जातियों से आने वाले आई.ए.एस. अधिकारियों को भी सामाजिक भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। परन्तु इस तबके को आरक्षण का लाभ जारी रहने से भी इस समस्या का निदान नहीं होने वाला। इस भेदभाव को दूर करने के लिए लड़ाई दूसरे मोर्चों पर लड़नी होगी। अकेले आरक्षण से जातिगत पूर्वाग्रह दूर नहीं हो सकते। अनुसूचित जाति आरक्षण में भी क्रीमी लेयर का प्रावधान होने से अनुसूचित जाति के बाकी हिस्सों को ही फ़ायदा होगा।

आरक्षण का सीमित और तर्कसंगत दायरा भी हर किसी को आरक्षण का समर्थक नहीं बनाएगा, परन्तु ऐसा करने से इस के विरोध की धार कुछ कुंद होगी और इस के समर्थन का दायरा और अधिक व्यापक होगा। इस दिशा में एक कदम यह हो सकता है कि अगर किसी श्रेणी के लिए न्यूनतम क% प्रतिनिधित्व पर्याप्त माना गया है और बिना आरक्षण लाभ के इस श्रेणी के 5% उम्मीदवार चयनित हो जाते हैं तो क में से 5% घटा कर शेष स्थान आरक्षण के तहत भरे जाने चाहिएँ। ऐसी व्यवस्था से पूर्वाग्रह पीड़ित समुदायों को एक न्यूनतम प्रतिनिधित्व तो सुनिश्चित होगा परन्तु जैसे-जैसे ये समुदाय ऊपर उठते हैं, आरक्षण बिना रद्द किए स्वाभाविक रूप से ही ख़त्म हो जाएगा। इस सुझाव पर विचार करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि आरक्षण का उद्देश्य चिह्नित समुदायों को एक न्यूनतम/पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है न कि जनसंख्या के अनुसार आनुपातिक प्रतिनिधित्व देना। जब संविधान के अनुसार 'पर्याप्त' प्रतिनिधित्व देना ही आरक्षण का उद्देश्य है तो सामान्य श्रेणी में चयन से इतर अलग प्रतिनिधित्व अनुपात कैसे तय हो सकता है? प्रतिनिधित्व पर्याप्त है या नहीं, यह कुल प्रतिनिधित्व से तय होगा न कि केवल 'आरक्षित' कोटे के तहत मिले प्रतिनिधित्व से।

हरियाणा में पंजाबी, ब्राह्मण आदि अन्य समुदाय भी आरक्षण की माँग कर रहे हैं, इस के लिए लामबंदी कर रहे हैं। आरक्षण में शामिल होने के लिए लगातार होते आन्दोलनों से यह आभास होता है कि आरक्षण के मामले में अति हो गई है। इस से आभास होता है कि शायद अब उपयुक्त समय है कि हम आरक्षण की समीक्षा कर के इसे वापिस असाधारण परिस्थितियों के लिए एक संकटकालीन उपाय के तौर पर पुन: स्थापित करें न कि इसे एक नियमित व्यवस्था का रूप दें।

संपर्क - 9416182061

आरक्षण समानता के अधिकार को खण्डित करता है ?-राजकिशोर

आरक्षण के खिलाफ सबसे जोरदार तर्क यही है। प्रकटत: यह तर्क बहुत मजबूत भी लगता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 साफ-साफ कहता है कि 'राज्य भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।' अनुच्छेद 15 (1) कहता है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इसमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। अनुच्छेद 16 तो और भी स्पष्ट है : राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषय में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।

लेकिन अगर हम ध्यान से देखें, तो आरक्षण अवसर की समानता के अधिकार को ही प्रतिष्ठित करता है। मंडल आयोग ने मोहन और लल्लू की पृष्ठ भूमि का तुलनात्मक विवेचन कर इसकी बहुत अच्छी व्याख्या की है। मोहन एक खाते-पीते घर का लड़का है। उसके माता-पिता शिक्षित हैं। वह एक अच्छे पब्लिक स्कूल में जाता है। पढ़ने के लिए उसके पास अलग कमरा है। माता-पिता भी उसकी पढ़ाई में मदद करते हैं। घर में रेडियो है, टेलीविजन है। पत्र-पत्रिकाएं आती हैं। उसके माता-पिता के परिचितों में प्रभावशाली लोग हैं, जो सही जगह पर प्रवेश कराने में उसकी मदद कर सकते हैं। इसके विपरीत लल्लू गांव में रहता है। माता-पिता अशिक्षित और गरीब हैं। दो कमरों की झोंपड़ी में आठ-आठ लोग ठूंसे रहते हैं। हाई स्कूल की पढ़ाई करने के लिए उसे तीन किलोमीटर पैदल आना-जाना पड़ता है। कालेज की पढ़ाई के लिए वह तहसील में अपने चाचा के यहां जाकर रहता है। अब आप ही बताइए कि दोनों को अगर एक ही तराजू में तौला जाएगा, तो क्या लल्लुओं की तुलना में, मोहन हमेशा आगे नहीं रहेंगे? अत: समानता की मांग यही है कि लल्लू के साथ रियायत से पेश आया जाए, उसके 40 प्रतिशत अंकों को मोहन के 60 प्रतिशत अंकों के बराबर माना जाए और नौकरी में उसके लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाए, नहीं तो उसे कभी नौकरी मिल ही नहीं सकेगी। अत्यंत विषम स्थितियों में रहने वालों के साथ समानता का व्यवहार करना जंगल का कानून है, सभ्य समाज का नहीं।

- साभार-आरक्षण क्यों जरूरी है : शमसुल इस्लाम

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम नहीं आरक्षण

□ धर्मवीर सिंह

डीएसपी ऑफिस से निकलते ही उस सिपाही के चेहरे पर गुस्से और हिकारत का भाव था। गेट पर खड़े उसके साथी संतरी ने पूछा कि छुट्टी मंजूर हो गई क्या? गुस्से से तमतमाए सिपाही ने अपनी परंपरागत नफरत के साथ कहा, साले चमार ने मना कर दिया। करीब 22 साल पहले का जींद जिले के नरवाना उपमंड़ल में डीएसपी कार्यालय के बाहर दो पुलिसकर्मियों के बीच का यह संवाद आज भी मेरे जहन में उसी कदर ताजा है, मानो कल की ही बात हो। मेरे बड़े भाई उन दिनों नरवाना सिटी थाने में तैनात थे। मैं अपनी पढ़ाई का खर्च लेने अक्सर उनके थाने चला जाता था। थाने के साथ ही डीएसपी कार्यालय था, जहां सुखदेव सिंह नाम के अफसर उन दिनों डीएसपी नरवाना के पद पर तैनात थे। लेकिन उनके मातहत तथाकथित सवर्ण मुलाजिमों के लिए शायद वे डीएसपी से पहले एक चमार थे। यह मैं नहीं, उन दो कर्मचारियों के बीच का वह संवाद बता रहा था। शायद पुलिस में इतने बड़े ओहदे पर पहुंचकर भी उनकी निम्न जाति ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। मेरा सुखदेव सिंह से कोई निजी वास्ता कभी नहीं रहा। लेकिन सोचता हूं कि अगर वे महकमें में डीएसपी के बजाय कोई चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते तो उनकी क्या दुर्गति होती। अपना आला अफसर होते हुए भी जो अदना से जवान उन्हें हिकारत से साला कह कर गरिया रहे थे, तब उनका रवैया कितना तिरस्कृत होता। इसी रवैये से मौजूदा व्यवस्था में आरक्षण के औचित्य व उसकी अनिवार्यता का सवाल उठता है।

अगर आरक्षण नहीं होता, तो क्या सदियों से जातीय उत्पीड़न का संताप झेल रहे करोड़ों दलित व पिछड़ों को इस व्यवस्था में निर्णय लेने व उनको लागू करवाने वाली व्यवस्था में कोई भागीदारी मिल पाती। आरक्षण लागू होने के सत्तर साल बाद भी देशभर में आरक्षित जातियों विशेषकर दलितों के साथ होने वाला भेदभाव व उत्पीड़न इसका जवाब है। इस तरह से कहा जा सकता है कि आरक्षण दलित व पिछड़ों को मिला हुआ नागरिकता का अधिकार है। बिना आरक्षण दलित-पिछड़ों को वे बुनियादी अधिकार भी हासिल नहीं थे जो एक स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों को मिलने चालिए। इसमें सबसे बड़ा अधिकार समानता का अधिकार है। इसमें भी सबसे अहम है सामाजिक समानता का अधिकार।

यही कारण है कि आरक्षण का विश्लेषण आरक्षण का लाभ लेने वालों की आर्थिक संपन्नता से आंकने की बजाय उनको मिले सम्मान से आंकना चाहिए। क्या आरक्षित जातियों को आरक्षण लागू होने के इतने सालों बाद भी वह सम्मान मिल पाया है जो सामान्य जातियों के लोगों को हासिल है। अगर इसका जवाब हां में है, तो आज ही आरक्षण की व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए। लेकिन हकीकत ऐसी नहीं है। दलित उत्पीड़न की घटनाएं रोज बयान कर रही है कि जाति के आधार पर होने वाला उत्पीड़न ही दलितों के उत्पीड़न की मुख्य वजह है। यानी सामाजिक तौर पर अभी भी आरक्षित जातियों के नागरिकों को दोयम दर्जा ही हासिल है। इसलिए बाकी जातियों की तरह दलित-पिछड़ों को भी समान नागरिक अधिकार हासिल होने तक आरक्षण जरूरी है। यही आरक्षण की उपलब्धि होगी।

आरक्षण किसी भी रूप में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का हिस्सा नहींहै। आरक्षण का मुख्य मकसद सदियों से वंचित समुदायों को शासन प्रशासन में हिस्सेदारी देकर उन्हें राष्ट्र का अभिन्न अंग होने का एहसास दिलाना है। इसलिए आरक्षण की आर्थिक आधार के बजाय सामाजिक या जातीय आधार पर वकालत की जाती है। डा.आंबेडकर ने कहा था कि हम तब तक एक राष्ट्र नहीं बन जाते जब तक कि हमारे दुख-सुख सांझा नहीं बन जाते।

नि:संदेह आजादी के सत्तर साल बाद भी एक लोकतांत्रिक देश में आरक्षण जैसी व्यवस्था शर्मनाक है। यह शर्मनाक इसलिए है क्योंकि अभी भी देश की आबादी का बड़ा हिस्सा सामाजिक तौर पर इतना तिरस्कृत है कि उसे आरक्षण का सहारा देकर मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जा रहा है। सत्तर सालों तक चुनी गई सरकारें व समाज सुधार का ढिंढोरा पीटने वाले संगठन आबादी के इतने बड़े हिस्से को इतनी सामाजिक समानता भी नहीं दिला पाए कि उन्हें आरक्षण की जरूरत न रहे। आरक्षण सामाजिक न्याय का उपकरण है। जहां-जहां भी इस उपकरण को सही तरीके से इस्तेमाल किया गया है, वहां सामाजिक न्याय कायम हुआ है। आरक्षित जातियों के सामाजिक स्तर में सुधार हुआ है। उनमें शिक्षा व रोजगार को लेकर एक ललक पैदा हुई है। स्वाभाविक है कि एक शिक्षित व रोजगारशुदा व्यक्ति सामाजिक उत्पीड़न व भेदभाव को भी बर्दाशत नहीं करेगा। आरक्षण ने जो सबसे अहम काम किया है वह इन वर्गों में सपने देखने की शक्ति पैदा की है। एक स्वतंत्र व भेदभाव रहित जीवन जीने का सपना।

सम्पर्क: 9253681039

'देस हरियाणा' की कोशिश रहती है कि अपने पाठकों को आस-पड़ौस की भाषाओं में रचे जा रहे साहित्य से परिचित करवाए। इन पन्नों पर पहले भी पंजाबी साहित्यकार संतराम उदासी, लाल सिंह दिल, गुरदियाल सिंह, अजमेर सिंह औलख, मनजीत टिवाणा की रचनाएं प्रस्तुत की जा चुकी हैं। इस बार प्रस्तुत हैं पंजाबी के महत्वपूर्ण कवि सुरजीत सिंह सिरड़ी की कविताएं। जिनका अनुवाद किया है परमानंद शास्त्री ने।

संपादक

सुरजीत सिंह सिरड़ी की कविताएं - पंजाबी से अनुवाद परमानंद शास्त्री

आत्मकथ्य

जीवन संवेदना से भरा पड़ा है, संवेदना ही कविता का पर्याय है, हर संवेदनशील व्यक्ति कविता को जीता है, यह बात अलग है कि वो उसे शब्दों की जुबान दे पाता है या नहीं। अब सवाल यह है कि जहां आपकी संवेदना खड़ी है, वहीं तक आपकी कविता की पहुंच है, ठीक इसी प्रकार एक पाठक या आलोचक का किसी कविता को समझ पाना उसकी संवेदना की पहुंच द्वारा ही निर्धारित होता है।

कविता का फलक बहुत विशाल है। कवि की निजता से लेकर व्यापकता तक, पारिवारिक परिपेक्ष्य से सामाजिक सरोकारों तक, कबीलों की राजनीति से समाजवाद व समूचे जगत के कल्याण तक, कुछ भी तो ऐसा नहीं है जो कविता से बाहर हो। जब आप कविता के धरातल पर उतरते हैं तो आपको शब्द घड़ने नहीं पड़ते, शब्द उतरते हैं। अब हो सकता है कोई कहे शब्द क्या आकाश से उतरेंगे, तो मेरे ख्याल में वह एक उद्वेलित मनःस्थिति है जब आप कविता मयी होते हैं, उसी स्थिति विशेष को कविता के उतरने की अवस्था कह सकते हैं। कविता वो संवेदना है जो कवि को लिखने के लिये मजबूर कर दे, जब तक शब्द रूप न ले, बेचैन करती रहे, सोने न दे।

कोई मुझसे गर यह सवाल करे कि मैं कब लिखता हूँ तो मैं कहूंगा कि जब कभी भी मैं लिखने बैठा हूँ मुझसे लिखा नहीं गया या जो मैंने लिखा उससे मुझे संतुष्टि नहीं मिली। इसके विपरीत जब भी वस्तुस्थिति के संवेदनात्मक धरातल पर उतरा और संवेदना ने लिखवाया तो मैं कभी रोया, कभी हंसा, कभी कुंठित हुआ, कभी गर्वित कभी प्रेमिल हुआ तो हर भाव के साथ जो कविता बनी उसने मुझे तुष्टि दी। रचनाकार कविता रचते समय खुद एक बहाव में बह जाता है तो पाठक को भी कविता बहाकर ले जाए तभी लेखनी सही मायने में कविता होती है।

चूंकि कविता जीवन को और बेहतर बनाने के लिये संघर्ष के फलस्वरूप पैदा हुआ बोध है इसलिये कविता में ज़िंदादिली व दिशा होना लाज़िमी है।

सूरा सो पहचानिये जो लरै दीन के हेत,
पुर्जा पुर्जा कट मरै कबहुँ न छाडे खेत

कवि वास्तव में ऐसा सूरमा हो कि वो दीन, दुखी, पीड़ित, उपेक्षित व शोषित के लिये लड़े। उसकी संवेदना पीड़ित के साथ हो, इतना ही नहीं कविता उनको एक सूत्र में बंधने केलिये प्रेरित करे। कविता आम लोगों के लिये उन्हीं की भाषा में हो ताकि आसानी से समझ आ सके। यदि आपकी भाषा कठिन है तो जिन लोगों की बात आप कर रहे हैं उन लोगों तक आपकी बात पहुंच ही नहीं पाएगी, तब मुझे उस रचना का औचित्य भी समझ नहीं आता।

कविता जीवन दर्शन से निकलती है, जैसे जैसे कवि के दर्शन का विकास होता है, कविता का भी विकास होता है। असल में कविता ज़िन्दगी के फलसफे में ही रचिमिची होती है जिसका मुख्य लक्ष्य भी जीवन को और सुंदर बनाना ही है और यह लक्ष्य कविता मनुष्य में संवेदनात्मक विकास के ज़रिए प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

अपनी कविता और उसके सरोकारों के विषय में मैं ज्यादा नहीं कहना चाहूँगा, इसके बारे में सुधि पाठक तय करें कि मेरी कविता कहाँ खड़ी है। **- सुरजीत सिंह सिरड़ी**

कविताएं अनुवाद - परमानंद शास्त्री

आवाम

आवाम को कौन बताता है
कि सरहद के उस पार
दुश्मन ही दुश्मन रहते हैं
और उनकी रगों में
खून नहीं

ज़हर दौड़ता है
उधर इंसान नहीं
शैतान ही शैतान बसते हैं
आवाम को क्यों नहीं
बताया जाता
कि सरहद के पार भी
रहते हैं आदमी ही
और उनके अंदर भी
धड़क रहा है
इसी तरह का दिल ही

हे ! शहीद भगत सिंह

हे !शहीद भगत सिंह
आज फिर आए हैं
देशभक्त
तुझे माला पहनाने
तुझे तिलक लगाने
टोपी उतार कर पगड़ी पहनाने
कुछ पगड़ी उतार कर टोपी पहनाने
कुछ अभी सलाह कर रहे हैं शायद
पगड़ी और टोपी उतार कर
चोटी लगाएं
या फिर
जनेऊ पहनाएं
पर तुम
भगत सिंह ही रहना
देश का ही रहना
इनसे देशभक्ति मत सीखना
देखना कहीं
किसी एक कुनबे
का ही होकर न रह जाना !

मेरा गाँव

मैंने कहा था कभी
तुम ज़रूर आना
मेरे गांव
दिखेंगे तुम्हे
नाचते मोर
उड़ती तितलियां
लहराती फसलें
पीपल तले
ताश खेलते बूढ़े
जोहड़ में नहाते बच्चे
बड़े बड़े
खुले घर आँगन
बड़ की छाँव
सुनेगी
घर के कोने में
रंभाती गाय
चिड़ियों के गीत
मेंढकों की टर्र टर्र
कौवे की कांव कांव
पर अब कहाँ !
तूने बहुत देर कर दी
अधिग्रहीत हो गई है
गांव की जमीन
लग गई हैं
बड़ी बड़ी फैक्ट्रियां
गांव के बाहर लगे हैं
गंदगी के ढेर
दिनभर उड़ती है दुर्गंध
प्रदूषित पानी की
पता नहीं क्यों
घरों में ही घुसे रहते हैं
रामू काका, लाजो काकी
जैलु बाबा, रज्जी बहन
अब तुम्हारे शहर जैसा ही
हो गया है मेरा गाँव
अब क्या करोगे तुम
मेरे गांव आकर ?

बंद आँखें

आँखें दोनों ही
बंद कर लेते हैं
कबूतर और
बगुला
कुछ देर बाद
एक बिल्ली के
मुँह में होता है
जबकि दूसरे की
चोंच में होती है
मछली !

जुगनू

जब चारों ओर
घुप्प अँधेरा हो
केवल
उल्लुओं और
चमगादड़ों को
साफ़ दिखता हो
साफ़ सुनता हो
तब
अन्धेरे के साम्राज्य को
ललकारता कोई जुगनू
न जाने कब
देशद्रोही सा लगने लगे
उल्लुओं और चमगादड़ों
की जमात को
और इसी अपराध में
न जाने कब
गुल कर दी जाए
उसकी रौशनी।

उड़ान

क्यों कहते हो
बाबुल
कि लड़कियां तो
चिड़िया सी होती हैं
इनका क्या है
इन्होंने तो उड़ जाना है
नहीं
मेरे बाबुल
लड़कियां चिड़िया
नहीं होतीं
पर हमें भरनी है
ऊँची उड़ान
हमारे परों को
खोल दे
हमारी जंजीरों को

तोड़ दे
हमारे लिए ही तो है
सारा अम्बर
हम बसेंगी
सदा तेरे अंदर
अब
कभी मत कहना
मेरे बाबुल
लड़कियां तो चिड़िया
होती हैं
इनका क्या है
इन्होंने उड़ जाना है
अब के
कहना
इनका सारा अम्बर है
कोसों दूर होकर भी
रहती मेरे अंदर हैं

वही तस्वीर

दीवार पर गड़ी ये कीलें
अनायास ही क्यों खींच लेती
हैं मेरा ध्यान
वो बस एक तूफान ही तो था
जिसने चकनाचूर कर दी थी
वहां टँगी तस्वीर
एक अरसे बाद भी
कहाँ हटा पाया हूँ मैं उसे
अपने भीतर के फ्रेम से
आज भी उन्ही कीलों पर
अनायास ही दिखने लगती है
वही तस्वीर

मैं चनाब बोल रहा हूँ

मैं चनाब बोल रहा हूँ
आधा पूर्व से
आधा पश्चिम से
पंजाब बोल रहा हूँ
तवारीख गवाह है
जब भी किताब खोलता हूँ
खून से सना हुआ
हर सफा मोड़ता हूँ
बम इधर से चले
या उधर से चले
मैं आधा इधर से
आधा उधर से जलता हूँ
मैं हामी रहा हूँ मुहब्बतों का
इश्क के गीत ढूंढता हूँ
बिछोड़े की आग में
कलेजा जला रहा हूँ
मैं चनाब बोल रहा हूँ
आधा पूर्व से
आधा पश्चिम से
पंजाब बोल रहा हूँ।

राजयोग

लोग
कैसे भीड़ में
तब्दील हो जाते हैं
और कैसे भीड़ भेड़ों में
तब्दील हो जाती है
ठीक उसी वक्त
भेड़िए कहाँ होते हैं ?
और क्या कर रहे होते हैं ?

चुप

धरती चुप है
पर इसी के गर्भ से
ज्वालामुखी फूटते हैं
भूचाल चलते हैं
अंबर भी चुप है
पर इसी की कोख में
पलते हैं प्रलय
और सूरज जलते हैं
हवा भी चुप है
इसी के कहर से
सागर खौलते हैं
तूफान उठते हैं
मैं भी चुप ही हूँ
अभी तक !

- संपर्क 9416921622

पवन चौहान

नलवाड़ का खूंटा

इस बार नलवाड़ का खूंटा
खड़ा है नगौण खड्ड के खुले मैदान में
बिल्कुल अकेला
ताकता हुआ
बस
दो-चार जोड़ी बैल
खूब सारे आवारा सांड
और गायों के झुण्ड को
अपने वजूद पर होता हुआ शर्मिंदा

पिछले कल ही तो
ठोंक दिया था उसे मंत्री जी ने
सदियों की उसकी जमीन पर
ताकि सजी रह पाए
बेशक!
किराए पर लाए बैंलों से ही
इस बार की भी नलवाड़
और रसूख अपना भी

सुकेत की नलवाड़
शान है सुकेत की
रियासत काल की परंपरा
और किसानों के वजूद की

अब बैल बचे हैं
न ही वे किसान
सब मस्त हैं
वर्तमान की मस्ती में
इस मशीनी समय की
अर्थ की भागमभाग में

नलवाड़ का मैदान
भर रहा है अब
सरकारी और निजी भवनों की श्रृंखला

और गाड़ियों की पार्किंग से
नगौण खड्ड देख रही है चुपचाप सब
याद कर रही है बर्षों पहले की त्रासदी
दे रही है प्रलय से बचने का मौका
बार-बार

खुरली वाला बैल का खूंटा
अब संभाल लिया है
विदेशी नस्ल की गाय ने
या फिर
उखाड़ लिया गया है उसे
या निगल लिया है जंग ने
या वह सड़ गया है
पूरी तरह से
उगे कुकरमुत्त समझा रहे हैं सब

मैदान में अकेले खड़े खूंटे को याद है
लींडी खड्ड से लेकर नगौण तक
उन बेहिसाब बैलों का हुजूम
किसानों की जोड़ियां
बैलों को बांधने की जगह के लिए होने वाली
खूब बहसें, लड़ाइयां

जगह न मिलने पर
राष्ट्रीय राजमार्ग के दोनों किनारों पर बंधी
बैलों की लंबी-लंबी पंक्तियां
और व्यापारियों का शोर
बैलों के श्रृंगार के सामान से सजी
मैदान से लेकर सड़क के आर-पार तक की हाटियां

और हाटियां से आने वाली
ताजा जलेबी, शक्करपारे
मक्की और बेसन के पकौड़ों की खूश्बू
साथ ही
मैदान के कोने में
सजने वाली बिना डर की छिंज
फसल पकने और साजे पर
उसका अपना पूजन

उसे याद है
लोगों का वह प्यार
उनके हाथों का मुलायम स्पर्श
अच्छी से अच्छी नस्ल के बैलों को
तलाशने का जुनून

खूंटा खड़ा है अब अकेला
अपने अतीत के पन्नो को पलटता
मैदान के सूनेपन को निहारता
और बैलों की पदचापों
उनके गले की घंटियों का इंतजार करता हुआ

वह समझ रहा है समय की चाल
और चुपचाप
लौट रहा है
अपने अतीत में
अपनी सुनहरी यादों के साए तले
बैलों की घंटियों को समेटता हुआ
अपने अंदर ही अंदर
शनैः शनैः।

(खुरली-स्थान जहां पर
पशुओं के लिए चारा डाला जाता है।
छिंज अर्थात कुश्ती)

दोस्त, तुम्हारा मिलना

दोस्त
तुम मिले हो आज
लगभग तीन दशक बाद
लौट आया है जैसे सारा बचपन
एक बार फिर
तुम्हारी बातों से
लौट आई है शहर में
गांव की सारी खुश्बू
बचपन के सारे खेल
गुल्ली-डंडा, पीडू, राजा-रानी
और भी बहुत सारे
हमारे मनोरंजन के साथी

तुम रोज मिला करो मेरे दोस्त यूं ही
इन्ही यादों को हम समेटा करेंगे फिर से
और तैयार कर लेंगे
अपना वही पहले वाला गांव
उसका सारा माहौल
यहीं कहीं अपने आस-पास
तुम देखना फिर
हम दौड़ा करेंगे उन्ही पगडंडियों में
उन्ही हरे-भरे खेतों की मेड़ों पर
उसी शुद्ध हवा में लेंगे सांस

हम फिर खेलेंगे वही बचपन के सारे खेल
अपने बच्चों के संग
कुछ पल के लिए निकालेंगे उन्हे
इस इंटरनैट की व्यस्तता से बाहर
ले चलेंगे उन्हे अपने साथ
उसी हरियाली, उन्ही लहलहाते खेतों के बीच
अपने गांव की सादगी में
कुछ पलों के लिए ही सही
अपने गांव को ढूढेंगे फिर से एक बार
जो इस भागमभाग में
यादों से ही निकल गया था

शुक्रिया मेरे दोस्त
तुम्हारा मिलना
जीवन की अनमोल मासुमियत
को जीना है।

संपर्क 94185 82242

बीस साल की बूढ़ी लड़की

□ रानी कुमारी

1.
यह किस्सा है
मेरे ननिहाल का
अभी वहां नहीं पहुंचा बाज़ार
और ना बड़ी-बड़ी गाड़ियां
जहां के लोग, हंसमुख और मेहनती हैं

मेरा ननिहाल...
साईबर सिटी के पास,
एक छोटे से गांव में है
जहां चारों तरफ खेत हैं
घर के बाहर ढोर बंधे हैं
वहां की सुभोर,
बहुत सुहानी होती है...
सुबह की ठंडी सुहानी हवा
पक्षियों का कलरव...
सुबह सवेरे घर के आदमी
खेतों पर निकलते,
साथ में बांध दोपहर की रोटी
दिन भर करते जी-तोड़ मेहनत,
साथ देते घर के बच्चे-बच्चियां

2
कर दी जाती थीं शादियां,
छोटी उम्र में...
उनकी सोच, अभी भी पुरानी ही है!
ऊंच-नीच के फेर से,

उन्हें डर लगता है...
सोलह -सत्रह उम्र पार होते - होते,
लड़के-लड़कियों को ब्याह दिया जाता..
और परिवार की जिम्मेदारियां,
डाल दी जाती उन पर
कि कुछ और सोचने करने का
अवसर ही ना मिले उन्हें...

3.
मेरे हमउम्र
लड़के-लड़कियां नहीं मिलते,
अब ननिहाल में...
कितने ही किस्से मिले...
सोलह साल की शालू को, देख लिया था
किसी लड़के से बात करते हुए..
बस्स फिर क्या...
स्कूल बंद, घर में नजरबंद
और छह महीने में ब्याह - प्रबंध
जो अपने को संभालने की,
कोशिश कर रही थी..
अब भरे - पूरे परिवार की
जिम्मेदारियां ढो रही थी..
बीस साल की उम्र में,
वह दो बच्चों की मां बन गई।
जिसने अपना बचपन जिया नहीं,
अब वो अपने बच्चों को पाल-पोस रही थी
उनके ज्यादा तंग करने पर,
दुखी होकर,
खुद ही रोने बैठ जाती थी...

4.
इस कड़ी में,
मुझे याद आती है
सत्रह साल की शर्मिला,
स्कूल खत्म होने के बाद
वह करने लगी थी आगे पढ़ाई..

आसपास के लोगों को,
यह बात पसंद ना आई।
लड़की को पता था सब,

फिर भी हो गई...
उनकी नज़रों में एक भूल,
देख ली गई थी वो
फोन पर बात करते हुए...
भाई ने फोन झपट,
खींच कर मारा था थप्पड़
घर पर आकर सब ने, उसके शरीर पर
डाल दिए थे नीले निशान..
घर भर में मुर्दनी छाई थी
घर की औरतें कर रही थी विलाप
और दे रही थी गालियां..
बेचारी दादी संभाल रही थी,
अपनी पोती को।
सबको लताड़ रही थी,
उनकी सोच पर...
गांव भर में हो रही थी,
तरह-तरह की बातें,
किसी के साथ भाग गई शर्मिला
दो दिन से गायब थी, आज मिली है!
लड़के के साथ पकड़ी गई है
ओर भी ना जाने क्या-क्या..
आखिरकार एक और बेटी बलि चढ़ी,
कर दी गई उसकी भी शादी..

5.
शालू, शर्मिला के बाद
अब कृष्णा की बारी थी...
पढ़ने -लिखने और घर के कामों में निपुण,
कोई शिकवा-शिकायत नहीं
लेकिन आपसी जलन में
कृष्णा को भुगतना पड़ा वो सब
जिसकी वो हकदार नहीं..
अचानक से कहीं,
उसकी कॉपी के आखरी पृष्ठों पर मिले
फिल्मी प्रेम गीतों के मुखड़े और बरामद हुए,
कैलियोग्राफी किये हुए कुछ नामाक्षर
फिर क्या था...

धर ली गई कृष्णा,
घर में मची महाभारत..
रोती- बिलखती -कराहती रही कृष्णा
पर उसकी सुनी न गई, एक भी बात
अंततः साल भर में,
कर दी गई उसकी शादी...
सत्रह साल की उम्र में, बन गई मां
बीमार भी रहने लगी और
बच्चे के जन्म के साल भर बाद
पति भी न रहा,
पति की मौत का सदमा
कैसे सहती वो...
अठारह की उम्र में,
दुख के पहाड़ तले दब गई
बिठा दी गई एक दूजबर के घर,
अब एक इसका और दो उसके बच्चे हैं
संभाल रही हैं घर -परिवार- बच्चे
यूं लोग कहते हैं, अब अपने ठिकाने तो है
पता नहीं ठिकाने से है या
ठिकाने लगा दी गई है से?

6.

पहली बार हुआ ऐसा,
मेरे ननिहाल में...
कि पढ़ लिख गई एक बेटी गांव की
फब्तियां ताने खूब कसे गए
लगाई गई दबे-छिपे तोहमतें
गांव घर के लोग कहते...
'ऐसी भी कै पढ़ाई काकी,
ब्याह का नाम न ले कुनबा
सारी उम्र घर में राक्खेगा !'
लड़की की पढ़ाई, समझदारी को
ठेंगा दिखाते...
उम्र बीस पार कर गई थी लड़की,
अब वह 'छोरी' ना रही गांव भर में
यूं अब समय से पहले ही,
उसको मिला था एक नया उपनाम
बीस साल की बूढ़ी लड़की!

संपर्क - 8447695277

पगडंडियां - नरेश मीत

ऊंची-नीची धरती पर
बिना रुके चलना पड़ता है।
बीच राह आने वाली चट्टानों को,
पैरों से दलना पड़ता है।
पगडंडियां ही लेती हैं
आकार,
समतल पथ का
आना-जाना होता जब
बारंबार।
जीवन के बीहड़ में
रास्ते नहीं बनते
अनायास।
अपेक्षित है
दृढ़ संकल्प
साहस, उत्साह,
एक सतत प्रयास।

सम्पर्क - 9416145673

लघु-कथा

मुआवजा

□ राधेश्याम भारतीय

गाँव में आंधी और ओला-वृष्टि के कारण नष्ट हुई फसल के बदले मुआवजा राशि बाँटने एक अधिकारी आया।

बारी-बारी से किसान आ रहे थे और अपनी मुआवजा राशि लेते जा रहे थे।

जब सारी राशि बंट चुकी तो रामधन खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा, ''साब जी, हमें भी कुछ मुआवजा दे दीजिए!''

''क्या तुम्हारी भी फसल नष्ट हुई है?''

''नहीं साब जी, ! हमारे पास तो जमीन ही नहीं है।''

''..तो तुम्हें मुआवजा किस बात का?'' अधिकारी ने सहज भाव से कहा।

'' साब जी, किसान की फसल होती थी.....हम गरीब उसे काटते थे और साल भर भूखे पेट का इलाज हो जाता था। अब फसल तबाह हो गई तो बताइए हम क्या काटेंगे....और काटेंगे नहीं तो खायेंगे क्या?''

'' तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा...जाइए अपने घर।'' इस बार अधिकारी कुछ क्रोधित स्वर में बोला।

रामधन माथा पकड़े वहीं बैठ गया।

मो-9315382236

प्रेमचंद जयंती की पूर्व संध्या पर 30 जुलाई, 2018 को डॉ. ओमप्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र में आज का दौर और प्रेमचंद विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी की अध्यक्षता संस्थान के अध्यक्ष डॉ. टीआर कुंडू व साहित्यकार ब्रजेश कठिल ने की और मुख्य वक्ता के रूप में देस हरियाणा के संपादक एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर डॉ. सुभाष चन्द्र ने अपने विचार व्यक्त किए। संगोष्ठी का संचालन वरिष्ठ साहित्यकार ओमप्रकाश करुणेश ने किया। विकास साल्यान ने प्रेमचंद का जीवन परिचय रखा। ओमप्रकाश करुणेश, डॉ. कृष्ण कुमार, रविन्द्र गासो, अरुण कुमार कैहरबा, सरिता, सुनील थुआ, हरपाल गाफिल, प्रीतम कुमार, ने बहस में हिस्सेदारी की। प्रस्तुत है इसके संपादित अंश -

- संपादक

प्रेमचंद का साहित्य शहीदों, क्रांतिकारियों, स्वतंत्रता सेनानियों की सोच व सपनों को याद करवाता है

डॉ. सुभाष चन्द्र

आज के समय में प्रेमचंद के साथ हमारा क्या रिश्ता बनता है। प्रेमचंद और हमारे साहित्यकार किस तरह से आने वाली पीढिय़ों को रस्ता दिखाते हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। प्रेमचंद 1936 में इस दुनिया में नहीं रहे, लेकिन वे समय बीतने के साथ-साथ और अधिक प्रासंगिक होते जा रहे हैं। हमें अपने समय को समझने की जरूरत है, कि हम प्रेमचंद को कैसे देखें, कैसे पढ़ें। साहित्य कभी पुराना नहीं होता। जैसे नई बारिश से दूब हमेशा पुनर्नवा हो जाती है। ऐसे ही कोई भी साहित्य अपने समय के सवालों से जूझता हुआ अपनी अर्थवत्ता ग्रहण करता है।

अब जब हम बात करते हैं अपने समय और प्रेमचंद के बीच के समय की। वे जब लिख रहे थे तो स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था। इतनी बड़ी सत्ता व शासन के खिलाफ वे लिख रहे थे। अनपढ़, मजदूर किसान, पूंजीपति, मध्यम वर्ग सभी मुक्ति के लिए जूझ रहे थे। वह ऐसा जमाना था जब अनेक बुद्धिजीवी व लेखक गांधी, टैगोर, आंबेडकर, भगतसिंह, नेहरू सक्रिय थे।

वे 1880 में पैदा हुए और 1907-08 में उन्होंने लिखना शुरू किया। यह वह समय है, जब ज्योतिबा फुले, विवेकानंद और स्वामी दयानंद की अगुवाई में 19वीं सदी का पुनर्जागरण आंदोलन था। प्रेमचंद ने पुनर्जागरण की पूरी परंपरा और चेतना को धारण किया। इसी नजर से वे भारतीय समाज के जीवन-संस्कारों के पिछड़ेपन को और सामाजिक संबंधों के अन्तर्विरोध देख पाए।

भारतीय समाज के मानस और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के विकास के अनुरूप ही प्रेमचंद का विकास होता गया। प्रेमचंद की ताकत थी कि उन्होंने भारतीय व विश्व के साहित्यकारों को भी पढ़ा। एक पूरी परंपरा और सहित्यक चेतना को आत्मसात करके प्रेमचंद रचना क्षेत्र में उतरे और लगातार बढ़ते रहे। यदि हम उनकी समीक्षाओं और अनुवादों को देखें तो प्रेमचंद के पास पूरा बौद्धिक आधार है।

लेकिन उन्हें कथा साहित्य की समृद्ध परंपरा नहीं मिली या तो जासूसी या ऐय्यारी उपन्यास थे। कबीर जैसे कवियों द्वारा स्थापित की गई काव्य की समृद्ध परंपरा थी। लेकिन गद्य की कोई परंपरा नहीं थी। प्रेमचंद ने कथा साहित्य का ट्रैक चेंज कर दिया। उनको बड़ा मलाल था। जगह-जगह वे लिखते हैं कि उपन्यासों और कहानियों की कोई बात करता है तो हिन्दी की कोई बात नहीं करता। बांग्ला को याद करते हैं और टैगोर को याद करते हैं। वे अपने समय में इस चीज से जूझ रहे थे।

प्रेमचंद की यह नजर कैसे विकसित हुई। प्रेमचंद प्रेमचंद बने कैसे? यह सवाल हर लेखक को खुद से पूछना पड़ता है और पूछना चाहिए। यह बहुत महत्वपूर्ण सवाल है। प्रेमचंद के पास विचारशीलता की समृद्ध परंपरा थी। वह विचारोद्वेलन का समय

था। सामाजिक-राजनीतिक पटल पर विभिन्न धाराएं सक्रिय थीं और सब मंथन कर रही थीं कि हमारा भारत कैसा बनेगा। हमें आजादी के बाद कैसा भारत चाहिए। हमें आजादी क्यों चाहिए।

क्या अच्छी सड़कें बन जाएं सिर्फ इसलिए, अंग्रेज भी यहां पर सड़कों व रेल का जाल बिछा कर गए। क्या सुविधाओं और कथित विकास के लिए। अंग्रेज भी अच्छे मैनेजर और अच्छे प्रशासक थे। प्रेमचंद के साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि राष्ट्रीय आंदोलन में विभिन्न शक्तियों के वर्गीय चरित्र का उदघाटन करते हैं। उनकी हर एक रचना चाहे वह 'गुल्ली डंडा' 'कफन', 'नमक का दरोगा' कहानी हो, चाहे 'गोदान', 'कर्मभूमि' या 'गबन'उपन्यास कोई भी रचना कहीं से भी उठाइये।

प्रेमचंद चरित्रों के माध्यम से दिखाते हैं कि मेहनतकश साधारण आदमी में मानवता के मूल्य ज्यादा हैं। चाहे वह मंत्र कहानी के बाबा भगत व डॉ. चड्डा में फर्क क्यों है। दोनों का एक ही एक ही काम है, रोगियों को ठीक करना। लेकिन एक बिना किसी भेदभाव के इन्सानियत को तरजीह देता है, दूसरा पैसे को तरजीह देता है। प्रेमचंद के उपन्यास गबन में एक चरित्र है देवीदीन खटीक। सबसे नीची जाति से। दोनों बेटे स्वदेशी आंदोलन में शहीद हो गए। वह नेताओं को लताड़ लगाते हैं-

''दिखाने को दस बीस कुर्ते गाढ़े के बनवा लिए। घर का और सब सामान विलायती है। सब के सब भोग विलास में अंधे हो रहे हैं। छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे, पहले अपना उद्धार तो कर लो। गरीबों को लूट कर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। इसलिए तुम्हारा इस देश में जन्म हुआ है। हां रोए जाओ, विलायती शराबें उड़ाओ। विलायती मोटरें दौड़ाओ, विलायती मुरब्बे और अचार चखो।.. पर देश के नाम को रोए जाओ। मुदा इस नाम को रोने से कुछ ना होगा। रोने से मां दूध पिलाती है, शेर अपना शिकार नहीं छोड़ता। रोओ उसके सामने जिसमें दया और धर्म हो।..एक बार एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर बहुत उछले कूदे। जब वे नीचे आए तो मैंने पूछा- साहब, सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है? तुम बड़ी-बड़ी तलब लोगे। तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे। पहाड़ों की हवा खाओगे। अंग्रेजी ठाठ बनाए घूमोगे। इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बंधु की जिंदगी भले ही ठाठ से गुजरे, पर देश का तो कोई भला ना होगा। बगलें झांकने लगे। तुम दिन में पांच बार खाना खाते हो। और वह भी बढ़िया माल। गरीब किसान को एक वक्त का चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूस कर तो सरकार तुम्हें रूपये देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है। अभी तुम्हारा राज नहीं है, तभी तुम भोग विलास पर इतना मरते हो। जब तुम्हारा राज हो जाएगा तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।''

प्रेमचंद भद्र समाज पर आक्षेप लगा रहे हैं। यह डिबेट है प्रेमचंद के साहित्य में। चाहे आहुति कहानी का उदाहरण ले लें। यदि जॉन की जगह गोबिन्द बैठ गया तो ऐसे सुराज से मुझे क्या लेना। जो भगत सिंह अपने लेख में लिख रहे थे, कि यदि अंग्रेज की जगह भारतीय बैठ जाएं। तो उस सुराज से हमारा क्या भला होगा। यानी आजाद भारत कैसा होगा? यह प्रेमचंद की रचनाओं की मुख्य विषय-वस्तु है।

अभी तक साहित्य में राजा, देवता, भूत-प्रेत केन्द्रीय किरदार थे। प्रेमचंद की रचनाओं में साधारण व्यक्ति हीरो बनने लगे। एक तरह से यह जनसाधारण की बढ़ती शक्ति का स्वागत है। प्रेमचंद के साहित्य की यही मुख्य विषय वस्तु है कि आजादी कैसी हो। आजाद भारत का सपना प्रेमचंद की रचनाओं की मुख्य विषय वस्तु है। यदि व्यवस्था में परिवर्तन के बिना आजादी मिलती भी है तो उसका कोई फायदा नहीं होगा।

धीरे-धीरे जब आंदोलन तेज होने लगे और यह अनुमान सभी को हो गया था कि अब भारत आजाद होकर रहेगा, चाहे उसमें कुछ साल ही क्यों ना लगें। भीमराव अंबेडकर भी यही सोच रहे थे कि आजादी के बाद भी यदि मनुस्मृति के अनुसार दलितों के कूएं अलग-अलग रहे तो ऐसी आजादी को क्या चाटेंगे। भगत सिंह भी यही सोच रहे थे कि आजादी के बाद भारत कैसा होगा?

प्रेमचंद का साहित्य हमें शहीदों, क्रांतिकारियों, स्वतंत्रता सेनानियों की सोच व सपनों को याद करवाता है। आज भी बड़ी संख्या में लोग कहते मिल जाएंगे कि अंग्रेजों का राज बहुत अच्छा था। प्रेमचंद की रचनाएं-नमक का दारोगा, गबन आदि से यह साफ होता है कि दस्तूरी-रिश्वत-नजराने के बिना अंग्रेजी राज में कोई काम नहीं होता था। भ्रष्टाचार की इस औपनिवेशिक विरासत को आज भी देखते हैं।

कर्मभूमि उपन्यास की शुरूआत की यह पंक्तियां देखिए-
''हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है। शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से वसूल नहीं की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन फीस का दाखिल होना अनिवार्य है। या तो फीस दीजिए या नाम कटवाईये। नाम कट जाता है। पारसी के कन्वीन्स कॉलेज में यही नियम था। सातवीं तारीख को फीस ना दो तो 21वीं तारीख को

दुगनी फीस देनी पड़ती थी। या नाम कट जाता था। ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके अलावा और क्या हो सकता था कि गरीबों के लडक़े स्कूल छोडकर भाग जाएं। वही हृदयहीन दफ्तरी शासन, जो अन्य विभागों में है। हमारे शिक्षालयों में भी है। वह किसी के साथ रियायत नहीं करते। चाहे जहां से लाओ। कर्ज लो। गहने गिरवी रखो, लोटा थाली बेचो, चोरी करो, मगर फीस जरूर दो। नहीं दूनी फीस देनी होगी या नाम कट जाएगा। जमीन और जायदाद के कर वसूल करने में भी कुछ रियायत की जाती होगी, लेकिन हमारे शिक्षालयों में नरमी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहां स्थायी रूप से मार्शल लॉ का व्यवहार होता है। कचहरी में पैसे का राज है। हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है। उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय। देर से आईये तो जुर्माना, ना आईये तो जुर्माना, सबक ना याद हो तो जुर्माना, किताबें ना खरीद सकिए तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाए तो जुर्माना, शिक्षालय क्या है जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है।''

प्रेमचंद अपने समय की शिक्षा व्यवस्था की आलोचना कर रहे हैं। उनके सामने कोई शिक्षा का मॉडल है क्या? आजादी मिले और ऐसी शिक्षा हो तो वह आाजदी कैसी? शिक्षा व्यवस्था और शिक्षण-पद्धति पर उनकी महत्वपूर्ण कहानी है- बड़े भाईसाहब। पाठ्यक्रम और घर की व्यवस्था पर भी इसमें तंज कसे गए हैं।

प्रेमचंद का साहित्य गवाह है राष्ट्रवाद की तमाम धाराओं का। चाहे वह अंबेडकर का राष्ट्रवाद है, चाहे भगत सिंह का, चाहे गांधी का या आरएसएस के गोलवलकर या हिंदू महासभा के वीर सावरकर का राष्ट्रवाद है। प्रेमचंद अपने समय के सबसे विश्वसनीय आदमी हैं। प्रेमचंद के साहित्य को देखेंगें तो राष्ट्रवाद की समस्त धाराओं के योगदान की सच्चाई हमारे सामने मिलेगी।

स्वतंत्रता आंदोलन और साम्प्रदायिकता के इतिहास को समानांतर रूप से देखें तो यह बात सामने आती है कि जैसे-जैसे आजादी का आंदोलन तेज होता जा रहा था और आजादी प्राप्त करने का समय नजदीक आता गया तो साम्प्रदायिकता का आंदोलन तेज होता गया, जिसका नतीजा भारत का विभाजन हुआ। आजादी के आंदोलन और साम्प्रदायिकता में क्या अन्त:संबंध है।

साम्प्रदायिकता की पूरी प्रक्रिया, रणनीति और मंतव्य प्रेमचंद हमारे समाने लेकर आते हैं। जिसके नतीजे भारत को तो भुगतने ही पड़े। साहित्य और पत्रकारिता को भी भुगतने पड़े। भारत के इतने बड़े पत्रकार और इतनी बड़ी मेधा गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद हुए कानपुर के साम्प्रदायिक दंगों में। उन्होंने पहचान लिया था साम्प्रदायिकता को, लेकिन वह इसे रोक नहीं सकते थे, वह आगाह कर सकते थे कि हम किस दिशा में जा रहे हैं। जाति और धर्म के नाम पर जब राष्ट्र के चरित्र तय होंगे तो यह सब होगा। इसलिए उनके उपन्यासों और कहानियों में जगह-जगह यह विमर्श मिलता है। प्रेमचंद का कम पढ़ा जाने वाला और कम चर्चित उपन्यास है-कायाकल्प। लेकिन उस उपन्यास में साम्प्रदायिकता के सवाल पर शानदार ढ़ंग से प्रकाश डाला गया है। दंगे, झगड़े कैसे होते थे। कैसे अंग्रेज हमारी भोली-भाली जनता को धर्म के नाम पर लड़वा देते थे। किस तरह से गाय और सूअर के नाम पर झगड़े हो जाते थे। कि मस्जिद के आगे से बाजा बजेगा और जलूस तो दशहरे का यहीं से निकलेगा। जैसे मंदिर तो वहीं बनेगा।

आज के दिन राष्ट्रवाद के नाम पर हमारे देश में अपने ही नागरिकों को मारा जा रहा है। 1947 में विभाजन हुआ देश दो टुकड़ों में बंट गया। लेकिन अब हर शहर का विभाजन हो रहा है। हर मोहल्ले में सरहदें बनाई जा रही हैं। सीधा सा सवाल है कि यदि अपने देश को जात-धर्म के नाम पर बांटते और तोड़ते हैं तो क्या हम अपने देश को मजबूत कर रहे हैं। यदि देश के लोग आपस में लड़ते हैं तो क्या यह राष्ट्रवाद है।

यदि देश के लोग कमजोर हैं, वे भूखे हैं, गरीब हैं, लाचार हैं और आपस में लड़ रहे हैं तो यह हमारी राष्ट्रीय समस्या है। राष्ट्रवाद और देशभक्ति देश की सीमा पर नहीं होती है, बल्कि हमारे विचारों और हमारे समाज में होती है। प्रेमचंद का यह एक केन्द्रीय विषय है।

आज के दौर में किसान की दशा को हम देखते हैं। उस समय तो भारत की पूरी अर्थव्यवस्था कृषि आधारित थी। राजनीति उच्च वर्ग और शिक्षित मध्यवर्ग के दायरे से निकल जब साधारण जनता तक पहुंची किसान, मजदूर व महिलाएं सभी आजादी की लड़ाई में शामिल हुए तो उनके सवाल भी आने लगे। यह सवाल भी आया कि क्या आजादी मिलने पर जागीरदारी व्यवस्था समाप्त होगी। क्या जमीन जोतने वालों को मिलेगी। एक किसान के लिए आजादी का क्या मतलब है। एक किसान के लिए आजादी का क्या मतलब है जब कि जिस भूमि पर वह खेती करता है, उसकी नहीं है और वह बंधुआ की तरह काम कर रहा है।

एक दलित के लिए आजादी का क्या मतलब है कि जब वह उस कूएं से पानी नहीं पी सकता, जिससे सारा गांव पानी पीता है। उस मंदिर में वह नहीं जा सकता, जिसमें सभी जाते हैं। उन सार्वजनिक स्थानों पर वह नहीं जा सकता, जहां सारे जाते हैं।

उस आजादी का क्या मतलब है। इसे बहुत ही महत्वपूर्ण ढ़ंग से अंबेडकर ने उठाया।

प्रेमचंद को समझ आ गया था कि विकास का जो मॉडल अपनाया जा रहा है, उसमें गोदान के छोटी जोत के किसान होरी को जमीन गिरवी रखनी पड़ेगी, वह अपनी जमीन पर बंटाईदार बनने पर विवश हो जाएगा। फिर वह उससे बेदखल होकर मजदूर में तब्दील हो जाएगा। यह प्रक्रिया कि छोटा किसान इन आर्थिक नीतियों में मजदूर बन जाएगा, चाहे वह होरी है या पूस की रात का हल्कू है।

इसलिए विवादित हुई कफन कहानी में घीसू और माधो को पता है। घीसू और माधो काम नहीं करते या फिर डबल मजदूरी मांगते हैं। किसलिए काम, जब मेहनत के बदले में मिलता कुछ नहीं है। गरीबी व भूख इन्सानी संवेदनाओं को कुंद करके मनुष्य को पशुवत बना देती है। प्रेमचंद पूंजीवादी शोषक व्यवस्था के इस व्यवहार को देख रहे थे और अभिव्यक्त कर रहे थे।

आज जो किसान की दुर्दशा है। प्रेमचंद के समय में किसानी में आत्महत्या का कोई उदाहरण नहीं है। किसान अन्नदाता है, किसान धरती फाड़ कर अनाज उपजाता है। किसान कितना ताकतवर है, लेकिन आत्महत्या कर लेता है। क्यों नहीं लड़ता वह? क्या उसका नैतिक पतन हो गया है? क्या उससे संघर्ष चेतना गायब हो गई है? किसान की आत्महत्याओं को पिछले दस-पंद्रह साल से इतना बड़ा आंकड़ा बनता जा रहा है। क्या कोई ऐसा साहित्यकार, बुद्धिजीवी या राजनेता किसानों को यह संदेश भी नहीं दे पाया कि कम से कम आत्महत्या मत करो।

भारत में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि तामिलनाडू से आकर किसान देश की राजधानी में प्रदर्शन को मजबूर हो रहे हों। वे मल खा रहे हों और मूत्र पी रहे हों। ऐसा विभत्स नजारा दिल्ली राजधानी में। यह तो कभी नहीं देखा गया।

किसान कितना बड़ा वर्ग है। किसानों के नाम पर कितनी राजनीति होती है। हमारा साहित्यकार उसे किस तरह से संबोधित कर रहा है। कितना जुड़ाव है उसका। यह हम सबके लिए प्रश्न है? जब हम प्रेमचंद की बात करते हैं तो सिर्फ प्रेमचंद का महिमागान करने से हमारा पीछा नहीं छूटता। हमें अपने अंदर भी झांकना पड़ेगा कि जब हम प्रेमचंद पर गोष्ठी कर रहे हैं तो प्रेमचंद के मंतव्यों और लक्ष्यों व संकल्पों को दोहरा रहे हैं तो यह सवाल बनता है। आज के साहित्यकार व बुद्धीजीवी क्या कर रहे हैं। प्रेमचंद का उपन्यास गोदान व कई रचनाएं किसान के जीवन का महाकाव्य है। क्या उससे किसान आंदोलन व परंपराओं को कुछ मिला। यह गंभीर सवाल है।

दलित-जीवन पर प्रेमचंद की अनेक कहानियां हैं। एक कहानी है मंत्र उसमें बहस चल रही है दलित बस्ती व आर्यसमाजी प्रचारक के बीच में। आर्यसमाजी दलित बस्ती में शुद्धीकरण करने के लिए जाते हैं तो दलित की ओर से सवाल किया जाता है कि क्या आप अपनी बेटी की शादी भी कर लोगे हमारे साथ। वे कहते हैं कि हम भोजन तो कर लेंगे साथ-साथ लेकिन बेटी की शादी नहीं। और दलित पंचायत उनका बहिष्कार करके चली जाती है। यह प्रेमचंद है जो बहिष्कार करवा देते हैं। जब तक तक रोटी और बेटी नहीं है, तब तक सब झूठ है।

उनकी एक कहानी है - दूध का दाम। कहानी बड़े सशक्त ढ़ंग से व्याख्या करती है कि वर्ण व्यवस्था के अनुसार किस तरह से बाकी तीन वर्ण शूद्रों पर लदे हुए हैं। प्रेमचंद ऐसे मूलभूत सवाल उठा रहे थे, जोकि सदियों से चले आ रहे सवाल हैं। चाहे वह ठाकुर का कूआं है या सदगति। ऐसा क्रांतिकारी साहित्य तो प्रेमचंद ही लिख सकते थे। प्रेमचंद के दिमाग में ऐसे समाज की परिकल्पना थी, जो भेदभाव से मुक्त हो। गहरी संबद्धता के साथ ऐसा साहित्य लिखा जा सकता है।

प्रेमचंद का विकास होता है। शुरू में हर लेखक के पास एक आदर्श होता है। प्रेमचंद के पास भी आदर्श था। वे अपने मनोवांछित कहानी की परिणति कर देते थे। बड़े घर की बेटी व पंच परमेश्वर सहित कितनी ही कहानियां हैं, जिसमें सब कुछ ठीक-ठाक चलता है। लेकिन अंत में वे मनोनुकूल समाधान कर देते हैं। फिर प्रेमचंद को पता चल गया कि ऐसे समाधान से काम नहीं चलेगा। कहानियों में आप भले ही कितने समाधान करते रहें। हमारा समाज ऐसा नहीं है। इसीलिए वे बाद में घोर यथार्थवादी हो गए।

कई लोग कहते हैं कि प्रेमचंद को होरी मरवाना तो नहीं चाहिए था। यह बड़ा माड़ा करया प्रेमचंद नै। प्रेमचंद की कोई स्याही थोड़ी खत्म हो गई थी, या कागज खत्म हो गए थे। वो तो चंदा इकट्ठा करके होरी को गऊशाला दिलवा देते। यदि वे चाहते तो और दस पेज लिख देते। यह उनको पता है कि होरी को मरना ही है। जो छोटी जोत का किसान है और जो धर्मसत्ता, धनसत्ता और राजसत्ता द्वारा किए जा रहे शोषण के दुष्चक्र में फंस गया तो उसे मरना ही है। जब तक वह मर्यादाओं और पुरातन धारणाओं में जिंदगी बसर करता रहेगा तो वह मरेगा ही।

प्रेमचंद के चरित्र इस स्थिति तक नहीं पहुंचते कि वे विद्रोह कर दें। जो व्यक्ति लड़ेगा नहीं, वह मरेगा। प्रेमचंद के गोदान का यही सत्य है। यदि होरी लड़ता और संघर्ष करता, जिसे वह गलत मानता है, उसके खिलाफ नहीं लड़ता तो मरता है। प्रेमचंद एक प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं। वे छोटे किसान को फलते-फूलते देखना चाहते हैं, लेकिन इसके बावजूद उसे मार देते हैं। वह इसलिए कि

वह घोर सच्चाई को बयां करना चाहते थे।

यदि किसान वर्ग जो जोंकें उससे चिपटी हुई हैं। धर्म, परंपरा और दान आदि के नाम पर हमारी मेहनत की कमाई का कितना अधिक हिस्सा चला जाता है। धर्मसत्ता में फंसा आदमी, धनसत्ता में फंसा कर्जदार व्यक्ति, शासन सत्ता में नजराना आदि के चक्र में फंसा आदमी। यह तीनों सत्ताएं आपस में गठबंधन करके रखती हैं। होरी उनका भोजन है, वे उसे खा जाती हैं। होरी जितना कमजोर होता चला जाएगा, वे उतने ही फलते-फूलते जाएंगे। आंकड़े इसके गवाह हैं।

प्रेमचंद को पढ़ना ऐसी अन्तर्दृष्टि को प्राप्त करना है, जिससे हम अपने समय की शक्तियों के संघर्ष व अन्तर्विरोध देख सकते हैं। राजनेता किस तरह काउंसिल में बैठ कर किस तरह की बातें करते हैं और हम उनसे क्या उम्मीद लगा रहे हैं। यह चेतना की बात है कि हमने राष्ट्रनिर्माता व भाग्य निर्माता सहित सभी जिम्मे उनके हाथ छोड़ रखे हैं और अपने आप व्हाट्सअप मैसेज की फारवर्डिंग एजेंसी बने हुए हैं। उसे छोडऩे की जरूरत है। स्वयं सोचने की जरूरत है। प्रेमचंद हमें इसी दिशा में ले जाते हैं कि सारे माहौल के बारे में सोचो।

साहित्यकार का क्या दायित्व है। प्रेमचंद ने इसके बारे में जगह-जगह लिखा है। प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण तो बहुत ही यादगार है। हमें साहित्य की कसौटी बदलनी होगी। हमें वह साहित्य चाहिए जो बेचैन करे, सुलाए नहीं। और सोना तो मृत्यु का लक्षण है। साहित्य तो जीवन की आलोचना होती है।

स्वतंत्रता आंदोलन में विकसित हुए आदर्श हमारे संविधान का हिस्सा हैं। कैसा राज्य होगा। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार की जिम्मेदारी किसकी होगी। अब वे सब वापिस हो रही हैं। प्रेमचंद का साहित्य याद करवाता है कि अब दूसरे स्वतंत्रता आंदोलन की जरूरत है।

ओमप्रकाश करुणेश

सभ्य समाज के निर्माण के लिए प्रेमचंद को समझना जरूरी है। यदि देखा जाए तो उनमें एक तरफ गांधीवाद नजर आता है, तो दूसरी तरफ मार्क्सवाद नजर आता है। एक सिरे पर वे यथार्थ का वर्णन करते हैं। भूख गरीब में जीने वाले किसानों की दुर्दशा का वर्णन करते हैं और उनके चरित्रों को हमारे बीच खड़ा करते हैं। गोदान में किसान की व्यथा है। निर्मला उपन्यास में निर्मला दहेज की वजह से कैसे सताई जाती है। उसके सारे गुण भी दुर्गुण बन जाते हैं। उसकी अधेड़ अवस्था के एक व्यक्ति से शादी कर दी जाती है, जिसके तीन बच्चे हैं। नारी की दुर्दशा को निर्मला में चित्रित किया गया है। प्रेमचंद की कहानियों में सदगति, ठाकुर का कुआं, दूध का दाम प्रसिद्ध कहानियां हैं। दलित की हालत को उन्होंने कफन के माध्यम से दिखाया है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हंस जैसी पत्रिका निकालना उनके महत्वपूर्ण योगदान को दिखाता है। प्रेमचंद के समय में सामंती समाज था। आज भी उसके अवशेष बाकी हैं, उसे समझने में प्रेमचंद हमारी मदद करते हैं।

विकास साल्याण

कथा सम्राट, कलम के सिपाही और हिन्दी कहानी के भीष्म पितामह कहे जाने वाले प्रेमचंद का जन्म 31जुलाई, 1880 को बनारस के नजदीक लमही नाम के गांव में हुआ था। आठ वर्ष की उम्र में माता का साया उठ गया था। प्रेमचंद उर्दू में लिखने लगे थे और बाद में वे हिन्दी में आए। प्रेमचंद ने करीब 300 कहानियां, 14 उपन्यास, तीन नाटक, 11 अनुवाद, हजारों लेख लिखे हैं। प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी परंपरा की नींव रखी। उपन्यास के क्षेत्र में उनके योगदान को देखकर बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें उपन्यास सम्राट कहकर संबोधित किया था।

डॉ. कृष्ण कुमार-

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचंद पर टिप्पणी की है कि यदि आप भारत के समाज को समझना चाहते हो तो प्रेमचंद से बेहतर लेखक नहीं मिलेगा। आप उन पर विश्वास कीजिए वे बहुत भरोसे के आदमी हैं। इसी कड़ी में अच्युतानंद मिश्र की पुस्तक की टिप्पणी और जोड़ दें कि यदि आप भारत की 21वीं सदी को समझना चाहते हैं तो आपको 20वीं सदी को समझना पड़ेगा। 20वीं सदी वह बिंदू है, जहां से यात्रा शुरू होती है और उस बिंदू पर प्रेमचंद खड़े हैं। आखिर प्रेमचंद अपने निबंधों में ऐसी कौन सी बात उठा रहे हैं, जोकि हमें उनके साहित्य पर संगोष्ठी करने के लिए प्रेरित करती है। प्रेमचंद की वर्तमान समय में क्या प्रासंगिकता है। वे अपने समय के गरीब, मजदूरों व शोषितों के साथ कैसे जुड़े? उनके क्या सरोकार हैं। वह बार-बार सवाल कर रहे हैं कि धर्म क्या है? अमीर और गरीब की खाई क्या है और किसने निर्मित की है? जिसको आप संस्कृति और सामाजिक पुनर्जागरण की बात करते हैं, वह बार-बार प्रेमचंद के निबंधों में निकल कर आती है। प्रेमचंद हिन्दी का नया सौंदर्यशास्त्र रच रहे थे।

जिस जमाने में उपन्यास मनोविनोद और टाईम पास करने का साधन था, उसी समय प्रेमचंद साहित्य को एक मिशन के रूप में लेते हैं और हिन्दी के पाठकों को वहां से निकाल कर लाते हैं। इस मायने में वे अपने जमाने के सबसे आदरणीय साहित्यकार हैं। प्रेमचंद की एक कहानी है-मंत्र। मंत्र कहानी में डॉ. चड्डा और बूढ़ा भगत। बूढ़ा भगत का बेटा बीमार हो जाता है और वे डॉ. चड्डा के पास जाते हैं। चड्डा को लगता है कि बूढ़ा उनका समय बर्बाद कर रहे हैं और यह उनका खेलने का वक्त है। कुछ दिनों बाद डॉ. चड्डा के बेटे को सांप काट जाता है। पता चलता है कि इसका इलाज तो बूढ़ा व्यक्ति मंत्र से करता है। वह उसके पास पहुंचता है और बूढ़ा भगत उसका इलाज करता है। यह देखिए कि जो शिक्षा उस जमाने में मिल रही है, जिसकी छाया में हम पढ़ कर बड़े हुए हैं, जोकि हमें मतलबी बना रही है। ऐसा निरक्षर व्यक्ति का लक्ष्य पढ़े-लिखे व्यक्ति से ऊपर है। यह शिक्षा का विमर्श हमें प्रेमचंद के साहित्य में देखने को मिलता है।

डॉ. कृष्ण कुमार की किताब है - ज्ञान और शिक्षा, उसे देखें कि हमारी शिक्षा व्यक्तियों को अच्छा नागरिक तो बना रही है, अच्छे इन्सान नहीं। जैसे वियतनाम पर बम गिराने वाले सारे अच्छे नागरिक हैं। जर्मनी में यहूदियों को मारने वाले सारे अच्छे नागरिक हैं। भारत में भी पाकिस्तान को गाली देने वाले सारे अच्छे नागरिक हैं। यह विमर्श हमें प्रेमचंद के साहित्य में मिलते हैं, जिसने पहली बार हमारा ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया। जहां तक बात सौंदर्यशास्त्र को बदलने की जरूरत है तो प्रेमचंद स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि हमें ऐसे साहित्य की जरूरत है, जो सुलाए नहीं जगाए। मानसरोवर की भूमिका में वे लिखते हैं- आसमान में उडऩे वाले बादल किसान व शहरी व्यक्ति के लिए अलग-अलग सुंदरता रखते हैं। एक मेंढ़ पर बच्चे के साथ सोई हुई मजदूरनी और शहर में सजी-धजी औरत दोनों सुंदरता के अलग-अलग मापदंड हैं। जब तक हम सुंदरता के मापदंड नहीं बदलते हैं, तब तक चीजें नहीं बदलेंगी। सुंदरता के मापदंड एक खास वर्ग ने अपने लिए बनाए हैं। प्रेमचंद इसलिए बड़े रचनाकार हैं, क्योंकि उनका आदमी में विश्वास है। आदमियत में विश्वास है।

रविन्द्र गासो-

आज के समय में सत्ता का संघर्ष और सत्ता की धधकती ज्वालाएं लोगों की चेतना को झुलसा रही हैं। उनको बेआई मौत मार रही हैं। हमारे शिक्षा के संस्थान अनपढ़ता के अड्डे बन गए हैं, कारखाने बन चुके हैं। सत्ता के प्रतिष्ठान, मीडिया जनता को अंधी अनपढ़ता की गुफाओं में धकेलना चाहते हैं। लोग बहुत आगे बढ़े हुए हैं और चेतना भी आगे की है। लेकिन भ्रम की स्थितियां पैदा की जा रही हैं।

प्रेमचंद वर्गीय दृष्टिकोण से हर वर्ग की मानसिकता को पढ़ रहे थे और उनको कहानियों में लेकर आ रहे थे। प्रेमचंद हिन्दू-मुसलमान को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से नहीं देख रहे थे। वे उन्हें इन्सान के रूप में देख रहे थे। मानवीयता की जो सर्वोच्च परिभाषाएं होती हैं, वे उनकी अन्तश्चेतना का हिस्सा थी। इसीलिए वे प्रेमचंद बन पाए। प्रेमचंद अपने समय के सभी प्रश्नों से मुठभेड़ कर रहे थे। उस समय की जितनी भी ज्ञान की धाराएं थी, उनसे वह रस लेते थे। प्रेमचंद इसी कारण से प्रासंगिक हैं कि वे दलित, महिला, किसान, मध्यमवर्ग के सवालों से दो चार होते हुए उन्हें अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं। हमें भारतीय परंपराओं का अध्ययन करना चाहिए। प्रेमचंद ने उर्दू और संस्कृत का साहित्य पढ़ा। हम भी सभी प्रकार के ज्ञान से लैस होने की कोशिश करें।

अरुण कुमार-

अभी हाल ही में एक घटना घटी है। दिल्ली में भूख से बच्चियों की मौत हो गई हो। उनके पिता का नाम भी मंगल है, मुझे लगा कि जैसे यह 'दूध का दाम' का कोई एक्सटेंशन है। रिक्शा चलाता था। काम ठप्प हो गया तो वह काम की तलाश में दिल्ली पहुंचा। काम नहीं मिलने के कारण बेटियों को भोजन नहीं दे पाया और उनकी मौत हो गई। प्रेमचंद के जमाने और आज के समय में बहुत सी समानताएं हैं।

सरिता-

प्रेमचंद ने अपने लेखन में जीवन का कोई भी पक्ष नहीं छोड़ा, जो अछूता रह गया हो। प्रेमचंद के समय की समस्याएं आज भी बनी हुई हैं। मेरी दृष्टि में प्रेमचंद की कहानी कफन में भूख की समस्या को उठाया गया है। जब भूख है तो सभी रिश्ते तार-तार हो जाते हैं। आज भी भूख की समस्या बनी हुई है। गरीबी और भूख अनेक प्रकार की समस्याओं की जड़ है। शिक्षा खोखली होती गई है। सरकार की योजनाएं कागजों में सिमटी हुई हैं।

सुनील थुआ-

एक सवाल है जो जेहन में लंबे समय से है। प्रेमचंद के जाने के बाद दूसरा कोई प्रेमचंद क्यों नहीं हुआ। आज इतने सारे लेखक हमारे बीच हैं, जोकि किसी खास विषय पर ही लिख रहे हैं, जबकि प्रेमचंद ने समय के सभी विषयों पर साधिकार लिखा।

हरपाल गाफिल-

प्रेमचंद में अपने समय के मानवीय मूल्य थे, उन पर चिंताएं व्यक्त की हैं, अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से। आज वही मानवीय मूल्य समाज में बिल्कुल ही गायब हो गए हैं। आज वे मानवीय मूल्य आगे बढ़ने की रूकावट की तरह देखे जा रहे हैं। शासन व्यवस्थाएं मानवीय मूल्यों की उपेक्षा कर रही हैं। इतनी योजनाएं हमारे सामने आए दिन आ रही हैं, लेकिन सार तत्व सिरे से गायब है। प्रेमचंद द्वारा स्थापित किए गए मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए जद्दोजहद जारी रखनी होगी।

प्रीतम कुमार-

मजदूरों के बारे में यह कहा जाता है कि ये बिगड़ रहे हैं। डॉ. साहब ने कहा कि कितना ही काम कर लो हालात तो वही रहने हैं। इसमें थोड़ी और व्याख्या करने की जरूरत है कि मजदूरों की चेतना, उनके बिगड़ने की धारणा, उनसे काम लेने वालों का नजरिया और लेखक के नजरिये पर प्रकाश डालें।

डॉ. सुभाष चन्द्र-

यह बात कई बार कही जाती है कि दूसरा प्रेमचंद नहीं हुआ। कई बार हम ऐसा भी सुनते हैं कि दूसरा कबीर नहीं हुआ, दूसरा अंबेडकर नहीं हुआ। हर समय की अपनी चुनौतियां हैं। इतनी निराशाजनक स्थिति नहीं है। यदि प्रेमचंद के समय को देखें तो कितने लोग साहित्य से जुड़े हुए थे, तो उससे 10-20 हजार गुणा ज्यादा लोग आज हैं। जिस वर्ग के लोग तब साहित्य पढ़ा करते थे, वह अब शिफ्ट हो गई है। मध्यम वर्ग के बौद्धिक विलास व मनोरंजन से निकल कर अब साहित्य आम लोगों के बीच पहुंच गया है। जिन लोगों ने कभी किताब नहीं उठाई थी, उनकी पीढ़ी से शानदार साहित्य का निर्माण किया जा रहा है। आज भी हमारी नजर उनकी तरफ नहीं जाती। हमारी नजर मध्यम वर्ग व उच्च मध्यवर्ग तक सीमित है, जोकि कभी साहित्य को संरक्षण प्रदान करती थी। आज साहित्य के पाठक गाम-गली और छोटी-छोटी बस्तियों में हैं। स्थिति इतनी निराशाजनक नहीं है। प्रेमचंद के समय में जितने लेखक पूरे देश में थे, उतने तो आज हरियाणा में ही होंगे, जहां साहित्य की कोई बड़ी परंपराएं नहीं हैं।

बात प्रभाव की है। कि प्रेमचंद इतने प्रभावी ढ़ंग से जनता के साथ संवाद कैसे कर लेते थे। यह महत्वपूर्ण बात है। प्रेमचंद इतने लोकप्रिय क्यों हो पाए। हर साहित्यकार को अपने आप से यह सवाल पूछने चाहिएं। यह हर साहित्यकार का अपना आत्मसंघर्ष है। यदि साहित्यकार अपने समय के आंदोलनों व परिवर्तनों से नहीं जुड़ेगा तो वह प्रभावी साहित्य का निर्माण नहीं कर पाएगा।

बहुत से साहित्यकार स्थैतिक यथार्थ को लिख रहे हैं। गतिशील साहित्य गतिमान शक्तियों के साथ होता है। प्रेमचंद कहा करते थे कि साहित्यकार राजनीति के पीछे चलने वाली नहीं आगे चलने वाली मशाल है। लेनिन ने कहा कि यदि गोर्की नहीं होते और टोलस्टॉय नहीं होते तो रूस में क्रांति संभव नहीं थी। टॉलस्टाय के साहित्य में क्रांति नक्शा है। समाज में हो रहे परिवर्तनों को अपनी साहित्यिक दृष्टि से देख पाते हैं और उसे रचनात्मक रूप देकर लिख पाते हैं तो आपका साहित्य प्रभावी होगा। बदलावकारी शक्तियों को पहचानना साहित्यकार का दायित्व है।

आज भी ऐसे साहित्यकार हैं। केरल के साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपना उपन्यास वापस ले लिया। गिरीश कार्नाड को धमकियां मिल रही हैं। ए आर अनंतमूर्ति को सरकार बनने के बाद पाकिस्तान का टिकट भेजा गया। अनेक+ बुद्धजीवी हैं जो सत्ता के निशाने पर हैं। साहित्यकारों ने जब पुरस्कार वापिसी की तो सरकार बैकफुट पर गई। बहुत सारे सोशल मीडिया पर ट्रोल हैं जिन्होंने पुरस्कार वापिसी गैंग कहा। एक विधायक का बयान आया है कि मेरी चले तो मैं सारे बुद्धीजीवियों को गोली मार दूं। धमकियां देने वाले मूर्ख या पागल लोग नहीं हैं। यह कबीलों का जमाना नहीं है, कि हथियारों से किसी को बस में किया जाए। यह जमाना विचारों का है। इतिहास की लिपाई पुताई हो रही है। क्योंकि उनको पता है कि यह विचार ही है, जिसमें सबसे बड़ी ताकत है।

डॉ. टीआर कुंडू-

उर्दू में गालिब, संस्कृत में कालिदास, अंग्रेजी में शेख्सपीयर जिस तरह से मशहूर है, उसी प्रकार हिन्दी में प्रेमचंद हैं। ऐ हिन्दी वालो अगर तुममें चोरी करने की थोड़ी सी भी कला है तो उर्दू से गालिब को चुरा लाओ। यदि नहीं चुरा सको तो हिन्दी में उर्दू को ले आओ। क्योंकि उर्दू के साथ गालिब का नाम अटूट है। साहित्यकार दरबारी भी होते हैं तो समाजशास्त्री भी दरबारी होते हैं। व्यवस्था को बनाए रखने के लिए वे सत्ताधारियों की नीतियों को न्यायोचित ठहराते हैं। प्रेमचंद व्यवस्था में परितर्वन के लिए लिख रहे थे। आज भी प्रेमचंद भी हैं। हमारा सृजन बहुत रूखा होता है।

संपर्क - अरुण कुमार कैहरबा, 9466220145

हरियाणा के महान सूफी संत-कलंदर पानीपत

□ स्वामी वाहिद काज़मी

प्राचीनकाल में दिल्ली, उसके इर्द-गिर्द और पंजाब में हिन्दी की सरपरस्ती कररने वाले सूफी बुजुर्ग ही थे। इस विषय में महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए बाबा फरीद गंजेशकर (1173-1265 ई.) उनके शिष्य हज. निजामुद्दीन औलिया (सन् 1230-1325 ई.) और उनके शिष्य हज. अमीर खुसरो (सन् 1253-1325 ई.) आदि का नाम सबसे पहले मनोमस्तिष्क पर उभरता है।

हरियाणा में जिन सूफी संतों, वलियों, दरवेशों ने अपने पावन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सूफी मत का पवित्र आलोक चहुं और फैलाया, प्रभु-प्रेम और बिना किसी भेदभाव के इन्सान से इन्सान को जोड़ने वाले सच्चे स्नेह, भाईचारे और मेल-मिलाप का व्यवहारिक पैगाम दिया, उनमें पानीपत के सूफी संत शैख अबू अली कलंदर साहब का नाम और मकाम बहुत बुलंद और मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

आपका मूल नाम शैख सरफुद्दीन, कलियत (नाम से पूर्व प्रयुक्त वंशसूचक शब्द) अबू अली और लकब (सम्मान सूचक शक) कलंदर होने से पूरा नाम शैख सरफुद्दीन अबू अली कलंदर पानीपत है। 'बुअली' कहना या लिखना गलत है। यहां पहले 'कलंदर' शब्द का अर्थ स्पष्ट करना उचित रहेगा। इस बारे में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है-'कलंदर शब्द के अर्थ के संबंध में बहुत कुछ मतभेद जान पड़ता है। कुछ लोग उसे ईश्वर के लिए प्रयुक्त सीरियक भाषा का शब्द कहते हैं। वहीं दूसरों का कहना है कि यह शब्द फारसी के 'कलान्तर' (प्रधान पुरुष) अथवा 'कलान्तर' (रक्ष पुरुष) से निकला है। एक अनुमान के अनुसार कलन्दर शब्द तुर्की शब्द 'करिन्द' व 'कलन्दरी' से बना है, जो वाद्यों के लिए प्रयुक्त होता है और कुछ लोग उसका सम्बन्ध तुर्की के काल शब्द से जोड़ते हें, जो विशुद्ध अथवा पवित्र का समानार्थक है। यह सब भ्रामक विचार हैं।

सच यह है कि कलन्दर व उससे बना 'कलन्दरी' शब्द दोनों फारसी के हैं और उनका अर्थ है मुक्त पुरुष व मुक्तावस्था। यही अर्थ सर्वत्र प्रचलन में है और सूफी साहित्य में इन्हीं अर्थों में व्यक्त हुए हैं। यहां यह जान लेना भी आवश्यक है कि सूफियों के अन्य समुदाय अथवा पंथ (यथा चिश्तिया, नकशबन्दिया, सुहरवर्दिया आदि) भारत से बाहर जन्में थे, किन्तु कलन्दरिया पंथ भारत में ही जन्मा व फला-फूला है। इसके प्रवर्तक शैख नजामुद्दीन कलन्दर थे। कलन्दरी दरवेशों में ऐसी कुछ प्रथाएं भी पायी जाती हैं, जो भारत के नाथपंथी सन्यासियों तथा योगियों में होती हैं। मसलन, दाढ़ी-मूछों व केशों के साथ भौंहें भी साफ करना (इसके लिए एक पारिभाषिक सूफी शब्द है चहा (अबरू का सफाया), हाथ व कानों में लोहे के कड़े पहनना, सिर पर काला रूमाल बांधना, कमंडल या दंड धारण करना। कलन्दर फकीर लोग स्वयं में मगन रहने वाले भ्रमणशील और कभी-कभी अक्खड़ स्वभाव के भी होते थे। मजहबी आचार-विचार के मामलों में मीन-मेख निकालना पसंद नहीं करते थे। आवेश में आकर विरोधी और बकवादी व्यक्ति का अनिष्ट करने में भी नहीं चूकते थे। अस्तु।

शैख सरफुद्दीन के पिता इराक से भारत आकर पानीपत में आबाद हो गए थे। यहीं आपका जन्म हुआ। आपकी माता का नाम बीबी हाफिजा था। आप अपने समय के बहुत प्रसिद्ध आलिम थे। अनेक ग्रंथों के रचयिता थे। जब प्रभु-प्रेम के प्रबल प्रवाह में बहे तो भावावेश में वे तमाम ग्रंथ नदी में बहा दिए और कलन्दरी अपनाकर फकीर हो गए। आपका वंशक्रम इमाम अबू हनीफ की परम्परा से जुड़ा है और आपकी गणना कलन्दरिया पंथ के अत्यधिक प्रभावशाली दरवेशों में होती है। दरवेशी अपनाने के बाद प्रणीत आपके दो सूफी ग्रंथों की जानकारी मिलती है। एक है 'कंजूस असरार' और दूसरा 'रिसाला-ए-इश्किया'। हिन्दी में भी आप कविता करते थे। आपके द्वारा रचित हिन्दी कविताओं को ईश्वर-प्रेम से परिपूर्ण होने के कारण, चिश्ती सूफी संतों ने समाज अनीत भक्ति-संगीत के तहत बहुत अधिक सम्मान प्राप्त रहा है, पर उनके अब अधिक नमूने नहीं मिलते हैं।

आपका रचा एक बहु भावपूर्ण हिन्दी दोहा आज भी प्रचलन में तो है, पर कम ही लोग जानते होंगे कि यह आपकी रचना है। यह भी प्रामाणिक है कि दिल्ली के सबसे प्रसिद्ध सूफी संत हज. निजामुद्दीन औलिया से आपका पत्रात्मक संवाद भी होता था। कहते हैं कि निधन के समय आपकी आयु 124 वर्ष थी। सन् 1324 ई. में आपने इस लोक से प्रयाण किया और पानीपत में ही मजार है। इस एक मजार या कहें मकबरे के अलावा आपकी कहीं कोई दरगाह नहीं है। पानीपत में आपका मजार प्रसिद्ध दर्शनीय व ऐतिहासिक स्थल है, जहां प्रतिवर्ष शानदार ढंग से वार्षिक उर्स भी मनाया जाता है।

गयासुद्दीन तुगलक आप पर अपार श्रद्धा रखता था।

यहां तक उसने रूप-गुण-सम्पन्न लाडले पुत्र मुबारक खां की शिक्षा-दीक्षा हेतु आपके हवाले कर रखा था। आप भी उसे पुत्रवत स्नेह करते थें आपका जो हिन्दी दोहा, मैंने अनेक शात्रीय गायकों से दादरा-गायन में पिरोकर गाते हुए सुना, यह है-

सजन सकारे जाएंगे और नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर, भोर कदी न होय।।

इस दोहे की रचना से संबंधित जो घटना बतायी जाती है वह यह कि एक बार पिता के आदेश से मुबारक खान को प्रात: की वेला में यात्रा के लिए प्रस्थान करना था। जब आपको इसकी सूचना मिली तो उपरोक्त हिन्दी दोहा और एक फारसी शे'र में उसका खुलासा भी लिखकर भिजवा दिया। फारसी शे'र यों है-

मन शुनीदम यारे-मन फर्दा रवदराहे-शिताब,
या इलाही ताक्यामत वर न आमद आफताब।

अर्थात्-'मैंने सुना है कि भोर होते ही मेरा प्रिय तुरन्त यात्रा के लिए प्रस्थान करेगा। हे ईश्वर कयामत अर्थात् प्रलय तक सूर्योदय न हो।'

प्रसिद्ध शब्दकोश 'फरहंगे-आसिफिया' की भूमिका में यह उल्लेख भी मिलता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत और सूफी भक्ति संगीत (समाज) के विकास एवं उत्थान में भी आपका महत्वपूर्ण अवदान रहा है। करनाल निवासी एक शायर 'गुलचीं' साहब ने चालीस पृष्ठों की एक पुस्तिका रूप में आपका जीवन वृत, उर्दू मिशन मुल्तान से प्रकाशित किया था, जिसमें आपकी हिन्दी कविता के नमूनों के तौर पर आपके रचे हुए दोहे भी बताए जाते हैं। उनमें से एक दोहा इस प्रकार है-

पोथी सो थोथी भयी, पंडत भया न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सु पंडत होय।।

यहां सहसा वह दोहा स्मरण हो जाता है जो कबीर के नाम से मंसूब है-

पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै, सु पंडित होय।।

किन्तु जो पूर्वोल्लिखित दोहा आपके नाम से जाना जाता है, उसमें किसी भी प्रकार से कबीर की भाव-छाप की कल्पना तक इसलिए नहीं की जा सकती कि कबीर का जीवनकाल (जन्म-सन् 1398, निधन-सन् 1474 ई.) आपके डेढ़ सौ साल बाद का है। हां, कबीर के नाम से प्रचलित दोहे पर आपके भाव की छाप का अनुमान अवश्य होता है। कबीर के अनेक ऐसे दोहे आदि हैं, जिनके बारे में मुझ अल्पज्ञ को ही नहीं, कई विद्वानों को भी संदेह रहा है कि वास्तव में वे कबीर की रचनाएं हैं भी कि नहीं? किन्तु यहां वह चर्चा विषयानुकूल न होने से अभीष्ट नहीं है। यह मानना भी सरासर भ्रम क्या त्रुटिपूर्ण है कि करनाल में श्री गुरु नानक देव जी से कलन्दर साहब की भेंट और वार्ता भी हुई थी। यह भ्रम फैलाया था श्री देवेन्द्र कुमार ने। श्री गुरु नानक देव जी व कलन्दर पानीपत साहब की भेंट होना इसलिए संभव नहीं है कि सन् 1469 ई. में तो गुरु नानक देव जी का जन्म ही हुआ था। कलन्दर साहब तो सन् 1324 ई. में इस लोक से प्रयाण भी हो चुके थे। देवेन्द्र कुमार ने अपना एक लेख 'करनाल के ऐतिहासिक स्थल दैनिक ट्रिब्यून में 1988 में छपवाया था, जिसमें यह गलती की थी। अब इसे क्या कहा जाए कि शीर्षक बदल कर वही लेख उसने दैनिक ट्रिब्यून में ही नवम्बर, 2003 में छपवा दिया। ऐसे लोग इतना नहीं समझते कि सूफी संतों के व्यक्तित्व आदि को लेकर बेतुकी, निराधार और

सरमद गिला इख्तसार मी बायद कर्द।
यक कार अजीं दो कार बायद कर्द।
या सर बजा ए दोस्त मी बायद दाद।
या कता नजर अज यार मी बायद कर्द।
अर्थात इश्क में अपनी तमन्ना ही कुरबान नहीं की जाती,
प्रेमी मर्जी ए महबूब को अपनी रजा बना ले।
मुतालबा ये है कि आशिक अपनी अनानियत [अहंकार]
खत्म करदे।खुदी को मिटा दे।

...

गश्त वासिल चूं ब दरिया आबे जू।
आबे जूरा बाज अज दरिया मजू।
अर्थात नदी का पानी जब नद में मिल गया तो फिर नद में
नदी के पानी को न ढूंढ।

...

आबे दरिया चूं जनद मौजे दिगर।
दर हकीकत आब बाशद जलवागर।
अर्थात पानी की लहर पानी से अलग नहीं है।परमात्मा और
जगत अभिन्न है।

...

नफ्स आब चूं हुबाब सत जिस्मे तो।
आब चूं गरदी न मानद जिस्मे तो ।
अर्थात आत्मा पानी है, शरीर बुलबुला। शरीर न हो, तो तू
पानी ही पानी है ।

अबू अली शाह कलन्दर
राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी की फेसबुक से

भ्रामक बातें जनश्रुतियों के रूप में प्रचलन पाती हैं। सीधे सादे अवाम ही नहीं, पढ़े-लिखे लोग भी उन्हें सच मान लेते और आंख मूंद कर विश्वास कर लेते हैं। खैर!

श्री सत्यपाल गुप्त ने लिखा था कि करनाल में कलन्दर साहब के अनेक पद प्राप्त हैं। उदाहरण रूप में उनसे यह दोहा भी उद्धृत किया-

पौ फटतहिं सखि सुनत हौं, पिय परदेसिहिं गौन।
पिय में हिम में होड़ हौं, पहले फटिहै कौन।।

पुराने समय में एक शायर हुए हैं, संभवत: पंजाब के थे। नाम तो ज्ञात नहीं हो सका। उपनाम था-हामिद। उनकी एक रचना 'हामिदबारी' बताई जाती है। लगभग इसी भावभूमि पर हामिद साहब का भी एक शे'र पंजाबी, हिन्दी व फारसी शब्दों को महक से सुवासित सुन लीजिए-

अज्मे-सफर चूं कर दी साजन, नैनौं नींद न आई जी।
कद्रे-विसालत न दानिस्तम, तुझ बिन विरह सताई जी।।

गयासुद्दीन तुगलक का बनवाया हुआ, कलन्दर साहब का भव्य और शानदार मकबरा आज भी बहुत अच्छी हालत में पानीपत में मौजूद है और सूफी संतों के प्रति अकीदत व श्रद्धा रखने वालों के लिए किसी तीर्थ स्थल से कम नहीं है।

संदर्भ

1. स्वामी वाहिद काज़मी-'किरानुस्अदैन, मा. आजकली (नयी दिल्ली), फरवरी 2002 ई.
2. परशुराम चतुर्वेदी-सूफी काव्य संग्रह (1951)
3. मौलवी मुहम्मद रफ़ी-जामि-उल-लुग़ात (नौवां संस्करण-1947)
3ए. पंडित रतन पिंडौरवी-हिन्दी के मुसलमान शुअरा,
4. डा. शैलेश जैदी-अलखबानी,
5. स्वामी वाहिद काज़मी-'महान् विभूतियों का हिन्दी कलाम'- मै. हिन्दुस्तानी (इलाहाबाद), जनवरी-मार्च 1987
6. स्वामी वाहिद काज़मी-'बुजुर्ग हस्तियासें की हिन्दी कविता', सा. कान्ति (दिल्ली) 7-13 मई, 1978
7. पंडित रतन पिंडौरवी-हिन्दी के मुसलमान शुअरा,
8. कामूस-उल-मशाहीर (भाग-1)
9. पंडित रतन पिंडौरवी-हिन्दी के मुसलमान शुअरा,
10. देवेंद्र कुमार-'करनाल के ऐतिहासिक स्थल' दैनिक ट्रिब्यून (चंडीगढ़), 7 अगस्त, 1988
11. सत्यपाल गुप्त-'हरियाणा का समृद्ध सूफ़ी काव्य' - द्वैमासिक हरिगंधा (चंडीगढ़) प्रवेशांक,
12. प्रो. मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' - मुकद्दमा आबे हयात,
13. स्वामी वाहिद काज़मी - 'कौतिकी कविता की रोचकता', मा. वीणा (इंदौर), अगस्त, 1977

संपर्क: 10, राज होटल, पुल चमेली अम्बाला छावनी -133001

हरियाणवी कविता

सामण की रुत

□ विनोद वर्मा 'दुर्गेश'

मींह बरसै सामण की रूत मै
गात हंगाई कर रह्या री।
कद आवैगा भरतार बता दे
दिल कोनी डाटे डट रह्या री।

महीने भर का नाम लिया था
एक साल भी टप ग्या री।
कद लेगा सुध आण बता दे
बाट देख दिल थक ग्या री।

रोटी भी ना अच्छी लागैं
गाम हंसाई कर रह्या री।
पीला पड़ ग्या गात मेरा
के नाग बिरह का लड़ ग्या री।

ना देख्या मन्नै ब्याह का सुख
बणवास ज्यूं पल-पल कट रह्या री।
होली, दीवाली अर तीज त्योहार
बिना तेरे कुछ ना बणता री।

बागां म्हैं बोलैं मोर, पपीहा
काग भी कांव, कांव कर रह्या री।
रूक्खां पै नए-नए पत्ते आगे
आण देख, क्यूं हठ कर र्या री।

तू बॉडर पै लड़ै लड़ाई
घर मेरा बॉडर बण रह्या री।
जै दस दिन भीतर ना आया
जी मेरा लिकड़ के पड़ ज्या री।

संपर्क - 9896083277

भारत की पहली शिक्षिका माता सावित्री बाई फुले व उनके जीवन साथी महात्मा जोतिबा फुले का संघर्ष पूर्ण जीवन और कार्यों ने आधुनिक भारतीय समाज की नींव रखी दलितों, वंचितों, दमितों, पीड़ितों के वैचारिक आंदोलनों को गहरे से प्रभावित किया और भावी आंदोलनों को क्रांतिकारी दिशा प्रदान की। इन्होंने अपने अनुभवों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य रचना की जिनका ऐतिहासिक महत्व है।

सावित्री बाई फुले ने अपने पति जोतिबा फुले को 20 सालों के दौरान तीन पत्र लिखे थे। (एम. जी. माली द्वारा संपादित सावित्रीबाई फुले समग्र वांड्मय में संकलित हैं।) जो भारतीय समाज की ऐतिहासिक विरासत हैं। ये पत्र इनके सामाजिक सरोकारों पर प्रकाश डालते हैं। हम यहां पर उन तीन पत्रों का अनुवाद पेश कर रहे हैं - सम्पादक

सावित्री बाई फुले के पत्र

पहला पत्र

अक्तूबर 1856
सत्यमूर्ति, जोतिबा मेरे स्वामी
सावित्री का सलाम!

इतने उतार-चढ़ावों के बाद, लगता है मेरी तबियत अब पूरी तरह सुधर गई है। मेरे भाई ने मेरी बीमारी में मेरी बहुत सेवा की है। उनकी सेवा और भक्तिभाव दर्शातें हैं कि वह सच में कितने स्नेही हैं! जैसे ही मैं पूरी तरह ठीक हो जाऊँगी मैं पुणे आ जाऊँगी। कृपया मेरी चिंता न करें। मैं जानती हूँ कि मेरे न होने से फ़ातिमा को कितनी मुश्किल हुई होगी लेकिन मुझे यकीन है वह समझेगी और शिकायत नहीं करेगी।

एक दिन हम यूँ ही बातचीत कर रहे थे कि मेरे भाई ने कहा, "तुम्हें और तुम्हारे पति को जातनिकाला ठीक ही दिया गया है क्योंकि तुम दोनो अछूतों (महार और मांग) की सेवा करते हो। अछूत पतित लोग हैं और उनकी मदद करने के द्वारा तुम परिवार का नाम बदनाम कर रहे हो। इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम हमारी जाति की प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करो और ब्राह्मणों के आदेशों का पालन करो।" मेरे भाई की इन कठोर बातों से माँ बहुत ही व्यथित हुई। हालाँकि मेरे भाई भले आदमी हैं, उनकी सोच बहुत संकीर्ण है इसलिए उन्होंने हमारी कठोर आलोचना करने और हमें भला-बुरा करने में संकोच नहीं किया। मेरी माँ ने उन्हें डाँटा नहीं लेकिन कोशिश की कि वह अपने होश में आएं, "भगवान ने तुम्हें इतनी अच्छी ज़बान दी है लेकिन उसका दुरुपयोग करने का कोई लाभ नहीं।"

मैंने अपने सामाजिक कार्य का बचाव करने और उनकी गलतफ़हमी को दूर करने का प्रयास किया। मैंने उन्हें कहा, "भैया आपकी सोच संकीर्ण है, और ब्राह्मणों की सोच ने उसे और भी बदतर बना दिया है। बकरी और गाय जैसे जानवर आपके लिए अछूत नहीं है और बड़े प्यार से उन्हें छूते हो। नागपँचमी के दिन आप ज़हरीले साँपों को पकड़ कर उन्हें दूध पिलाते हो। लेकिन आप महार और मांग को, जो आपकी और मेरी तरह इनसान हैं, अछूत समझते हैं। क्या आप मुझे इसकी कोई वजह बता सकते हो? जब ब्राह्मण अपने पवित्र वस्त्र पहन कर पूजा-पाठ करते हैं तो वह आपको भी अशुद्ध और अछूत मानते हैं, वे डरते हैं कि आपका स्पर्श उन्हें दूषित कर देगा। वे आपके साथ महारों से अलग व्यवहार नहीं करते।"

जब मेरे भाई ने यह सुना तो उनका चेहरा लाल हो गया लेकिन उन्होंने मुझसे पूछा, “तुम उन महार और मांगों को क्यों पढ़ाती हो? लोग तुम्हें गालियाँ देते हैं कि तुम अछूतों को पढ़ाती हो। मुझसे बरदाश्त नहीं होता जब लोग तुम्हें बुरी बातें बोलते हैं और तुम्हारे काम में अड़ंगा डालते हैं। मैं ऐसा अपमान सहन नहीं कर सकता।” मैंने उन्हें बताया कि अँग्रेज़ लोगों के लिए क्या कर रहे हैं। मैंने कहा, “पढ़ाई-लिखाई की कमी निरी पाशविकता है। ज्ञान हासिल से ही ब्राह्मणों को उच्च प्रतिष्ठा हासिल हुई है। शिक्षा और ज्ञान उत्कृष्ट चीज़ें हैं। जो ज्ञान हासिल कर लेता है वह अपना निचला दर्जा त्याग कर ऊँचा दर्जा प्राप्त करता है। मेरे पति देवता समान पुरुष हैं। इस दुनिया में उनके बराबर कोई नहीं, किसी से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। उन्हें लगता है कि अछूतों को ज्ञान अर्जित करना चाहिए और आज़ादी प्राप्त करनी चाहिए। वह ब्राह्मणों से टक्कर लेते हैं और अछूतों को पढ़ाने के लिए उनसे संघर्ष करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि वह भी बाकी लोगों की तरह ही मनुष्य हैं और उन्हें भी गरिमामय मनुष्यों की तरह जीना चाहिए। इसके लिए उन्हें शिक्षित होना होगा। मैं भी उन्हें इसी कारण से पढ़ाती हूँ। इसमें गलत क्या है? हाँ, हम दोनों लड़कियों को, औरतों को, मांगों और महारों को शिक्षा देते हैं। ब्राह्मण नाराज़ हैं क्योंकि उन्हें लगता है इससे उन्हें परेशानी होगी। इसलिए वे हमारा विरोध करते हैं और यह मंत्र जपते रहते हैं कि ऐसा करना हमारे धर्म के खिलाफ़ है। वे हमारी निंदा करते और हमें बहिष्कृत करते हैं और आपके जैसे अच्छे लोगों के मनों में भी जहर घोलते हैं।

“आपको ज़रूर याद होगा कि अँग्रेज़ सरकार ने मेरे पति को उनके महान कार्य के लिए सम्मानित करने के लिए एक समारोह का आयोजन किया था। उनके सम्मान ने दुष्ट लोगों के मनों में जलन पैदा कर दी। मैं आपको बताना चाहती हूँ कि मेरे पति आपकी तरह केवल ईश्वर का नाम लेने या तीर्थ करने वाले नहीं हैं। वह दरअसल ईश्वर का ही कार्य कर रहे हैं। और उसमें मैं उनकी सहायता करती हूँ। और मुझे यह काम अच्छा लगता है। ऐसी सेवा करने के द्वारा मुझे अपार खुशी प्राप्त होती है। इससे यह भी पता चलता है कि कोई इन्सान किस ऊँचाई तक पहुँच सकता है।”

माँ और भैया मेरी बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे। मेरे भाई आखिरकार मुझसे सहमत हो गए, जो कुछ उन्होंने कहा था उसके लिए पश्चाताप किया और मुझसे माफ़ी माँगी। माँ ने कहा, “सावित्री तुम्हारी ज़ुबान से तो स्वयं भगवान के शब्द सुनाई दे रहे हैं। तुम्हारी बुद्धिमतापूर्ण बातें सुन कर हम तो धन्य हो गए।” माँ और भाई के द्वारा ऐसी सराहना सुन कर मुझे दिली खुशी हुई। इससे आप कल्पना कर सकते हैं कि पुणे की तरह यहाँ भी कई कमअक्ल लोग लोगों के दिलों में ज़हर घोल रहे हैं और हमारे खिलाफ़ झूठी बातें फैला रहे हैं। लेकिन हमें उनसे डर कर इस भले काम को जो हमने शुरू किया है क्यों छोड़ दें? बेहतर यही होगा कि हम इस काम में लगे रहें। हम इन सब पर विजयी होंगे और भविष्य में सफलता हमारे ही हाथ लगेगी। भविष्य हमारा है।

मैं और क्या लिखूँ?

सविनय प्रणाम,
आपकी,
सावित्री

दूसरा पत्र

29 अगस्त 1868
नईगाँव, पेटा खंडाला
सतारा

सत्यमूर्ति, जोतिबा मेरे स्वामी
सावित्री का सलाम!

मुझे आपका पत्र मिला। हम यहाँ ठीक-ठाक हैं। मैं अगले महीने की पाँच तारीख को आ रही हूँ। इस बारे में मेरी चिंता मत करें। इस बीच, यहाँ एक अजीब घटना घटी है। किस्सा कुछ ऐसे है। गणेश नाम का एक ब्राह्मण गाँव-गाँव जाकर धार्मिक कर्मकांड करता और लोगों को उनका भविष्य बताता है। इसी से उसकी रोज़ी-रोटी चलती थी। गणेश और एक किशोर लड़की शरजा जो महार बिरादरी से है को एक-दूसरे से प्रेम हो गया। जब लोगों को उनके संबंध के बारे में पता चला तो लड़की का छठा महीना चल रहा था। जब लोगों को यह पता चला तो उन्होंने गाँव-भर में घुमाया और उन्हें मार डालने की धमकी दी।

मुझे इस घातक योजना का पता चला तो मैं तुरंत उस स्थान पर पहुँची और उन्हें डरा-धमका कर वहाँ से भगा दिया। मैंने उन्हें बताया कि अगर वह यह हत्याएँ करेंगे तो ब्रितानी कानून के तहत उन्हें इसके गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। मेरी बात सुनने के बाद उन्होंने अपना इरादा बदल दिया।

साधुभाऊ ने गुस्से में भर कर कहा कि इस कपटी ब्राह्मण लड़के और अछूत लड़की को गाँव छोड़ कर चले जाना चाहिए। दोनों पीड़ित ऐसा करने को राज़ी हो गए। मेरे दखल ने इस जोड़े की जान बचा ली और वह आभारस्वरूप मेरे पाँव में गिर कर रोने लगे। मैंने किसी तरह उन्हें सांत्वना दी और शांत किया। अब मैं उन दोनों को आपके पास भेज रही हूँ। मैं और क्या लिखूँ?

आपकी,
सावित्री

तीसरा पत्र

20 अप्रैल 1877
ओटर, जुन्नर

सत्यमूर्ति, जोतिबा मेरे स्वामी,
सावित्री का सलाम!

साल 1876 चला गया, लेकिन अकाल नहीं — अपने अति विकराल रूप में यह अब भी मौजूद है। लोग मर रहे हैं। जानवर मर रहे हैं, ज़मीन पर गिरे पड़े हैं। भोजन की भारी कमी है। जानवरों के लिए चारा नहीं है। लोग अपने गाँव छोड़ कर जाने को मजबूर हो रहे हैं। कुछ लोग अपने बच्चों, अपनी कमसिन बेटियों को बेच रहे हैं और गाँव छोड़ रहे हैं। नदियाँ, सोचे, तालाब पूरी तरह से सूख गए हैं - पीने का पानी तक नहीं है। पेड़ नष्ट हो रहे हैं - पेड़ों पर पत्ते नहीं बचे। बंजर ज़मीन में हर जगह दरारें पड़ रही हैं। सूरज तपा रहा है, जला रहा है। लोग भोजन और पानी के लिए कराह रहे हैं, ज़मीन पर मरने के लिए गिर रहे हैं। कुछ लोग ज़हरीले फल खा रहे हैं, और अपनी प्यास बुझाने के लिए अपना ही पेशाब पी रहे हैं। वे खाने और पानी के लिए रोते हैं और फिर मर जा रहे हैं। हमारे सत्यशोधक स्वयंसेवियों ने ज़रूरतमंद लोगों को खाना और जीवनरक्षक वस्तुएँ उपलब्ध करवाने के लिए कमेटियाँ बनाई हैं। उन्होंने बचाव दलों का गठन भी किया है।

भाई कोंडाज और उनकी पत्नी उमाबाई मेरा अच्छा खयाल रख रहे हैं। ओटर के शास्त्री, गणपति सखारन, डुंबरे पाटिल और दूसरे लोग आपके पास आने की योजना बना रहे हैं। अच्छा होगा अगर आप सतारा से ओटर आ जाएँ और फिर अहमदनगर जाएँ।

आपको आर. बी. कृष्णजी पंत और लक्ष्मण शास्त्री याद होंगे। वे मेरे साथ प्रभावित इलाके में गए थे और उन्होंने पीड़ितों की रुपये-पैसे से भी मदद की है।

साहूकार दुष्टतापूर्वक इन हालात का फ़ायदा उठा रहे हैं। अकाल के कारण बहुत बुरी-बुरी बातें हो रही हैं। दंगे-फ़साद हो रहे हैं। कलेक्टर ने जब इसके बारे में सुना तो वह हालात को सामान्य करने आए। उन्होंने गोरे सिपाहियों को तैनात किया और हालात पर काबू पाने का प्रयास किया। पचास सत्यशोधकों को गिरफ़्तार किया गया। कलेक्टर ने मुझे बातचीत करने के लिए बुलाया। मैंने कलेक्टर से पूछा कि इन भले स्वयंसेवियों को झूठे आरोपों में फँसा कर बेवजह क्यों पकड़ा गया है। मैंने उनसे कहा कि उन्हें तुरंत छोडना चाहिए। क्लेक्टर निहायत ही शरीफ़ और निष्पक्ष थे। वह गोरे सिपाहियों पर चिल्लाए, "क्या पाटिल किसान डाके डालते हैं? उन्हें आज़ाद करो।" कलेक्टर लोगों की हालत से बहुत ही द्रवित हुए। उन्होंने तुरंत ही ज्वार से भरी चार बैलगाडियाँ रवाना कीं।

आपने गरीबों और ज़रूरतमंदों के लिए उदार और कल्याणकारी कार्यों की शुरुआत की है। इस ज़िम्मेवारी में मैं भी हाथ बँटाना चाहती हूँ। मैं आपको भरोसा दिलाती हूँ कि मैं हमेशा आपकी सहायता करूँगी। मैं कामना करती हूँ कि इस पवित्र कार्य के द्वारा अधिक से अधिक लोगों की सहायता की जाए।

मैं और कुछ नहीं लिखना चाहती।

आपकी,
सावित्री

सावित्री बाई फुले की कविता

उसे कैसे कहें इन्सान?

ज्ञान नहीं, विद्या नहीं
पढ़-लिखकर शिक्षित होने की मंशा नहीं
बुद्धि होकर भी उसे व्यर्थ गंवाए
उसे कैसे कहें इन्सान?

दे दो हरि खाट पर बैठे-बिठाए,
पशु भी ऐसा कभी नहीं करते
जिसका कोई विचार नहीं, आचार नहीं
उसे कैसे कहें इन्सान?

सहानुभूति किसी को मिले नहीं
न तो कोई मदद करता उसे
परवाह न करे किसी की कभी
उसे कैसे कहें इन्सान?

ज्योतिष, पंचाग, हस्तरेखा में पड़े मूर्ख
स्वर्ग-नरक की कल्पना में डूबे
पशु जीवन में भी
ऐसे भ्रम के लिए कोई स्थान नहीं
उसे कैसे कहें इन्सान?

पत्नी बेचारी काम करती रहे
मुफ्तखोर बेशर्म खाता रहे
पशुओं में ऐसा अजूबा नहीं
उसे कैसे कहें इन्सान?

लिख-पढ़ न पाए
अनसुनी करे, भलाई की बात को
पशुओं को भी बात समझ में आवे
पर मूढ़ समझे नहीं

उसे कैसे कहें इन्सान?
अपने पशुत्व की जरा भी शर्म न हो
उसको ही माने सुख
और पशु जीवन की राह चले
उसे कैसे कहें इन्सान?

गुलामी का न जिसे दु:ख हो
न कभी उन्नति का संकल्प करे
मानवता को जो कहे मेरी ठोकर तले
उसे कैसे कहें इन्सान?

पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े, बंदर, इन्सान
जन्म-मृत्यु सभी चराचर को है एक समान
जीवन का इतना सा सच जिसे समझ न आए
उसे कैसे कहें इन्सान?

तुलसीदास का काव्य-विवेक और मर्यादाबोध

☐ कमलानंद झा

तुलसीदास मध्यकाल के महान साहित्यकार हुए हैं। जिन्होंने भारतीय साहित्यबोध और लोक जीवन की चेतना को गहरे तक प्रभावित किया है। तुलसीदास को लेकर हिंदी आलोचना में निरंतर वाद-विवाद और संवाद होता रहा है। रामकथा ने भारतीय जीवन विशेषतौर पर उतर भारत के जीवन को प्रभावित किया है। प्रो. कमलानंद झा ने हिंदी विद्वानों के परस्पर विरोधी विचारों की चर्चा करते हुए अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, जो तुलसीदास अध्ययन को नई बहस प्रदान करेगें। लेखक ने रामकथा और तुलसीदास के काव्य-विवेक और मर्यादाबोध को समझने के लिए शोध परक सामग्री पेश की है। प्रस्तुत है तुलसीदास का काव्य-विवेक और मर्यादाबोध पुस्तक की भूमिका।

संपादक

हिंदी साहित्य में सर्वाधिक चिंतन-मनन-पठन और विवेचन-विश्लेषण यदि किसी एक कवि का हुआ है तो वह तुलसीदास ही हैं। रोचक तथ्य यह है कि इस चिंतन-मनन में सर्वाधिक विवादास्पद और परस्पर विरोधी अध्ययन भी तुलसीदास के संदर्भ में ही देखने को मिलता है। यद्यपि इसके कई कारण हो सकते हैं, किंतु एक महत्त्वपूर्ण कारण तुलसीदास को अखिल भारतीय भक्ति संवेदना और तत्कालीन ऐतिहासिक-सामाजिक-राजनीतिक सांस्कृतिक परिस्थितियों और संदर्भों में न देखकर एक खास निर्धारित सांचे में ढालकर देखने-समझने की कोशिश है। यही वजह है कि अधिकांश अध्येताओं को कबीर आधुनिक चित्त के करीब लगते हैं, लेकिन तुलसीदास उस अर्थ में आधुनिक तथा समकालीन प्रतीत नहीं होते। अगर सभी तरह के पूर्वग्रहों से मुक्त होकर तुलसी साहित्य का अध्ययन किया जाय तो वे भक्ति काल के किसी भी कवि से कम आधुनिक और समकालीन सिद्ध नहीं होंगे। इस कथन को तुलसीदास के महिमामंडन के रूप में नहीं, बल्कि उस समय और समाज को समझने की कोशिश के रूप में देखा जाना चाहिए।

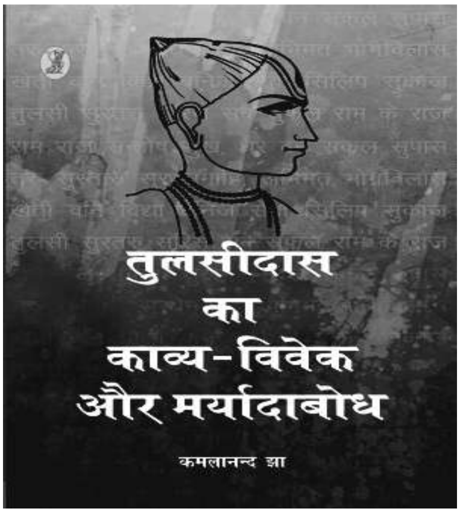

वाणी प्रकाशन, पेज 152, मूल्य 450 रुपये

प्रो.पुरुषोत्तम अग्रवाल ने डेविड एन लॉरेंजन की पुस्तक 'निर्गुण संतों के स्वप्न' में इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि, ''साहित्य बिरादरी से बाहर निकलकर व्यापक समाज को देखें तो कबीर, तुकाराम, तुलसी, मीरा, अखा, नरसी मेहता किसी भी समकालीन कवि से अधिक समकालीन हैं। यह तथ्य इतिहास की दृष्टि से भी ध्यान देने योग्य है और साहित्यिक संवेदना की दृष्टि से भी।'' दरअसल पुरुषोत्तम अग्रवाल भक्ति संवेदना के व्यापक धरातल की तलाश में वर्षों से बेचैन और परेशान रहे हैं। यही वजह है कि उन्होंने आज से लगभग बाईस साल पहले (1993) इन पंक्तियों के लेखक को तुलसीदास को इन्ही संदर्भों में देखने-परखने के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में लघु शोध-प्रबंध लिखने की प्रेरणा दी थी। उसी लघु शोध- प्रबंध 'रामराज्य की परिकल्पना और तुलसीदास का मोहभंग' का पूर्णतः परिष्कृत और परिमार्जित रूप है यह पुस्तक। इसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं की 'रामायणों' और उसके निहितार्थों पर विशेष ध्यान दिया गया था। उस समय हम में से किसी को अनुमान नहीं था कि यह मुद्दा एक दिन राष्ट्रीय बहस का विषय बन जाएगा। दिल्ली विश्वविद्यालय ने रामानुजन साहब के रामायण पर आधारित निबंध को जब पाठ्यक्रम से निष्कासित किया तो यह पूरे देश के बौद्धिक वर्ग में चर्चा का विषय बना।

यह पुस्तक उक्त बहस को विस्तृत संदर्भ में देखने की सिफारिश करती है।

तुलसीदास को एक खास निर्धारित साँचे में देखने की परिपाटी औपनिवेशिक काल में अंध धार्मिक इसाई मिशनरियों की देन है। हम भारतीय जिनकी आधुनिकता और समकालीनता को भौचक्क नजरों से देख रहे थे। वैसे ही यूरोपीय धार्मिक साहित्यकारों ने तुलसीदास को नितांत एकरेखीय कवि सिद्ध कर दिया। उनके पूरे चिंतन से तुलसी-साहित्य में विन्यस्त प्रचंड आत्मसंघर्ष और समकालीनता के सरोकार एक सिरे से गायब हो गए। इसमें दो राय नहीं कि तुसली की अपनी सीमाएं हैं, लेकिन इन सीमाओं के पार तुलसी के मनोजगत में अपने समय और समाज से मुठभेड़ करने की जो अदम्य लालसा है, वह अद्भुत और विलक्षण है। ध्यान देने की बात यह है कि उनकी सीमाएं (जाति और स्त्री संबंधी) भी अत्यंत त्रासदपूर्ण और कारुणिक हैं।

तुलसीदास के पाठों की विविधता और व्यापकता को एक निश्चित 'पाठ' में रिड्यूस कर देने की कोशिश कई यूरोपीय विद्वानों ने की है। यह वह समय था जब आधुनिक हिंदी साहित्य बनने की प्रक्रिया में था और जिन विद्वानों के कर कमलों से यह बन रहा था, वे एक तरफ ब्रिटिश पराधीनता का विरोध कर रहे थे तो दूसरी तरफ उसकी बौद्धिकता और शोध-दृष्टि से अभिभूत भी थे। फलस्वरूप इन भारतीय विद्वानों ने उन यूरोपीय विद्वानों के भक्ति अध्ययन को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उसे और आगे बढ़ाने का भी काम किया।

आधुनिक काल में जिन यूरोपीय विद्वानों ने तुलसीदास पर गहन चिंतन-मनन किया, उनमें डा. कारपेंटर, सर जार्ज ग्रियर्सन तथा डा. एल. पी. टेसीटरी आदि का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। इन विद्वानों के अकादमिक कार्यों के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन इतना तो तय है कि इनका निहितार्थ इसाई धर्म का प्रचार-प्रसार तथा भारतीय भक्त कवियों पर इसाई धर्म के प्रभाव को दर्शाना था। यह अकारण नहीं है कि कृष्ण भक्ति की ऐंद्रिकता उन्हें बिल्कुल रास नहीं आती थी और रामचरितमानस की नैतिकता पर वे लहालोट थे। कदाचित इन विद्वानों का ध्यान तुलसीकृत जानकीमंगल, दोहावली और रामललानहछू आदि पर नहीं गया जिसमें राम और सीता का श्रृंगार भाव अत्यंत प्रकट रूप में सामने आया है। संभव है इसी कारणवश उन्होंने सायास तुलसी के रामचरितमानस को ही महिमामंडित किया।

जिन प्रसंगों में तुलसीदास असाधारण रूप से समकालीन संदर्भों से टकराते हैं, उसे लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है। रामचरितमानस के उत्तरकांड की अनेक निष्पत्तियों से सहमत होना असंभव है, लेकिन जहाँ तुलसी राज और राजनीति की बात करते हैं, तो वे किसी सुलझे राजनीतिज्ञ के रूप में हमारे सामने आते हैं। यह क्या कम आश्चर्य की बात है कि मध्यकाल का कोई कवि, वह भी एक निरा भक्त कवि शासक और प्रजा के आपसी संबंध, देश और राष्ट्र के परस्पर संबंध, राजकोष, राजसेना, राजधानी, कर की उपादेयता और कर वसूली की नैतिकता पर आलोचनात्मक विवेक के साथ विचार-विमर्श करे। इस दृष्टि से पूरी भक्ति संवेदना में तुलसी विशिष्ट प्रतीत होते हैं। '' 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी...' प्रजा का सुख और दुख ही राजा के अच्छे बुरे होने की पहचान है, यह विचार आधुनिक जनतंत्र की भावना के अनुकूल है। धर्म और राजनीति से कविता के सरोकार बनते हैं, तुलसी कवि हैं और कविता की महत्ता का प्रतिमान यह है कि 'कीरति भनति भूति भलि सोई...धर्म, राजनीति, कविता सभी के बारे में लोकहित की जिस कसौटी का तुलसी उपयोग करते हैं, उससे स्पष्ट है कि उनकी मूल चिंता लौकिक है। भक्ति की अलौकिक ढ़ांचे में भाववादी दृष्टिकोण के बावजूद 'प्रबल यथार्थवादी' भावधारा परिलक्षित होती है। यह संयोग की बात नहीं है कि तुलसी के लिए बैकुंठ से बढ़कर अवध है, ईश्वर से बढ़कर भक्त है और मुक्ति से बढ़कर भक्ति है।'' (अजय तिवारी- तुलसीदासः एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, भूमिका से)

तुलसी साहित्य के स्पष्टतः दो चरण हैं-एक पूर्व चरण और दूसरा उत्तर चरण। दोनों चरण एक दूसरे का विलोम! एक दूसरे का प्रति पाठ! इतना प्रचंड बदलाव शायद ही किसी भारतीय कवि में देखने को मिले। यह बदलाव विचलन-फिसलन या भ्रांति नहीं बल्कि एक कवि का स्वप्न भंग है। बिहार में प्रचलित एक मुहावरे में कहें तो 'जिसके लिए चोरी की वही कहे चोर'। यह जो जानलेवा तनाव है, वह तुलसीदास को महान कवि बना देता है। बहुत पहले रमेश कुंतल मेघ ने इस बदलाव को लक्षित किया था। तुलसीदास के सृजनात्मक कार्य का पहला चरण वह है, ''जब वे केवल आदर्शवादी हैं। महाकाव्यात्मक भव्यता तथा आध्यात्मिक उन्मेश में महत ललित रचना करते हैं। रामचरितमानस, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न इसी चरण की देन हैं। दूसरे चरण में वे आदर्श से यथार्थ की ओर मुड़ने लगते हैं, उल्लास से गांभीर्य की ओर बढ़ते हैं और 'मानस' के परब्रह्म 'राम' के परम पद दायक गाथा के स्थान पर कवितावली के लोकमंगल के नायक श्री रघुनाथ का गुण गाने लगते हैं। इस चरण में उनकी महाकाव्यात्मक भव्यता का स्थान वेणुगीतात्मक (लिरिकल) वैयक्तिकता ले लेती है, आध्यात्मिक उन्मेश वाली आस्था, आदि का भी समावेश हो चलता है। इसी चरण में वे अपनी आत्मकथा कहने और समाज

की निर्भ्रांत आलोचना करने की नई जीवन-दृष्टि और सामर्थ्य पाते हैं। इसके साथ वे यथार्थ की ठोस भूमि पर उतरते चले जाते हैं। गीतावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली तथा हनुमानबाहुक आदि मुक्तक कृतियां इस चरण की देन हैं।''

वैयक्तिकता और इसी से जुड़ी आत्मकथात्मकता आधुनिक अवधारणा है। विनयपत्रिका, कवितावली और हनुमानबाहुक वैयक्तिकता की पराकाष्ठा है। अभाव, दारिद्र्य और भूख पर मध्य काल में शायद ही किसी ने इतने विस्तार से लिखा हो। तुलसीदास के साहित्य में मुगलकालीन असीमित भव्यता और आमजन की सार्वजनिक दरिद्रता अद्भुत रूप से इतिहास सम्मत है। मुगलकाल में लगान की अधिकता की वजह से मध्यकाल के किसानों द्वारा खेती से पलायन को सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। पेलसर्ट, बर्नी, मनूची एवं अन्य विदेशी यात्रियों ने मध्यकाल में सामान्य रूप से किसानों एवं मजदूरों की विपन्नता का उल्लेख किया है। तुलसी साहित्य का उत्तर चरण मुगलकालीन संपन्नता, वैभव और सांस्कृतिक विकास के मिथक को तोड़ता है। तुलसी साहित्य के इन्हीं पक्षों का उद्घाटन पुस्तक का एक प्रमुख लक्ष्य है।

गोस्वामीजी की रामराज्य की परिकल्पना इतनी प्रभावशाली थी कि बीसवीं शताब्दी के महापुरुष महात्मा गांधी ने अपने तई रामराज्य को संघर्ष का हथियार बनाया। इसी रामराज्य को अपने हिसाब से बाबा रामचंद्र ने किसान-श्रमिक जनसमूह को लेकर स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई लड़ी। तुलसीदास ने रामचरितमानस में रामराज्य के अंतर्गत वर्ण, जाति, धर्म, स्त्री, वेद आदि के द्वारा जिन मूल्यों और आस्थाओं को स्थापित किया, 'कवितावली', 'हनुमानबाहुक' तक आते-आते वे मूल्य और आस्थाएं हिलती हुई नजर आती हैं, कहीं-न-कहीं कमजोर पड़ती दिखती हैं। 'मानस' के उत्तरकांड का प्रतिपाठ है 'कवितावली' का उत्तरकांड। यह परिवर्तन क्रमशः आधुनिक चित्त का परिवर्तन है। मानस में जिस रामराज्य पर उन्हें अगाध विश्वास था, कवितावली में वे उसी रामराज्य को असमंजस में पाते हैं 'तुलसी समाज असमंजस में रामराज'। रामराज्य की निर्द्वंद्वता से रामराज्य की असमंजसता की बेचैन भरी यात्रा का अध्ययन पुस्तक की मूल चिंता है।

यह मात्र संयोग नहीं है कि आगे के आधुनिक कवियों ने तुलसी के उत्तर रामराज्य (कवितावली, हनुमानबाहुक) को अपना काव्य विषय बनाया। शायद ही कोई आधुनिक चित्त का कवि हो जिसने मानस के राम या रामराज्य को आधार बनाकर काव्य रचना की हो। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' और नरेश मेहता की 'संशय की एक रात' से लेकर भारत भूषण अग्रवाल की 'अग्निलीक' तथा नागार्जुन की 'भूमिजा' में रामराज्य को प्रश्नांकित किया गया है। यह इस बात का प्रमाण है कि तुलसी का उत्तर चरण आधुनिक चित्त के बहुत करीब पहुंच जाता है। इसी निरंतरता को दिखाने के लिए पुस्तक में एक अध्याय आधुनिक हिंदी रामकाव्यों पर केंद्रित किया गया है।

मैथिली भाषा में रामायण की स्थिति सभी अन्य भारतीय भाषाओं की रामायणों से अलग है। कारण कि सीता मिथिला की अत्यंत दुलारी बेटी थी और इस पृथ्वी पर कदाचित सीता इतना कष्ट किसी अन्य महिला ने नहीं भोगा होगा। राम की पत्नी होकर भी सीता की वेदना को थाह पाना संभव नहीं। मैथिली के एक लोक गीत में स्पष्टतः कहा गया है कि सीता का जन्म वियोग में ही बीत गया, दुख के अलावा सुख का मुंह सीता ने कभी नहीं देखा- 'सीता जनम वियोगे गेल, दुख छाड़ि सुख कहियो नहिं भेल।' कदाचित इसीलिए आज भी मिथिला की लड़कियों की शादी अवध में नहीं की जाती। मिथिला के कई स्थानों पर राम-सीता विवाह के आगे रामायण का पाठ नहीं होता। क्योंकि इसके बाद सीता के हिस्से में केवल दुख ही दुख आता है। इस अलग पृष्ठभूमि के कारण पुस्तक में एक अध्याय 'मैथिली रामायण' पर भी दिया गया है।

मिथिला और बंगाल की संस्कृति आपस में काफी मिलती -जुलती है। बंगाल में एक लोकोक्ति प्रचलित है जिसमें सीता को दुनिया की सबसे बड़ी अभागिन कहा गया है- 'जनम दुखिनी सीता, नोइं माता नोइं पिता'। यह रोचक तथ्य है कि मैथिली और बंगला में रामायण (राम केंद्रित) के बरक्स सीतायन (सीता केंद्रित) लिखने की प्रवृत्ति अधिक रही है। मैथिली में जानकी रामायण, सीतायन तथा बँगला में चंद्रवती रामायण इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। उपर्युक्त इन्हीं विमर्शों ओर बहसों की पृष्ठभूमि में पुस्तक को देखने-समझने की कोशिश की गई है। अगर भक्ति मीमांसा के बृहत्तर परिदृश्य में यह पुस्तक एक 'गिलहरी प्रयास' भी साबित हो पाये तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

संपर्क - प्रो. कमलानंद झा,
हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्विद्याल्य अलीगढ़
उतर प्रदेश।
सम्पर्क - 8521912909

डार्क हॉर्स : सच होते सपनों की दास्तान

□ शकुंतला

नीलोत्पल मृणाल हिंदी साहित्य जगत में नया किन्तु सशक्त एवं प्रभावशाली नाम है, इन्होंने अपनी पहली ही रचना 'डार्क हॉर्स' से पाठकों और साहित्य के मर्मज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। ख़ास बात यह है कि नीलोत्पल को पहले ही उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी के युवा पुरस्कार से सम्मानित भी किया जा चुका है। 'मूल रूप से बिहार से सम्बन्ध रखने वाले नीलोत्पल सेंट जेवियर्स कॉलेज, रांची से अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद पिछले कई वर्षों से राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय हैं। छात्र-आन्दोलन में विशेष भूमिका निभाने के साथ-साथ मृणाल लोकगायन के क्षेत्र में भी मंच से टीवी तक का सफ़र तय कर चुके हैं। ।' साहित्यकार संवेदनशील होता है, किन्तु जब वह एक सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में भी सक्रिय होता है तो समाज के प्रति उसका दायित्व और भी बढ़ जाता है। नीलोत्पल की छवि ऐसे ही लेखक के रूप में उभर रही है।

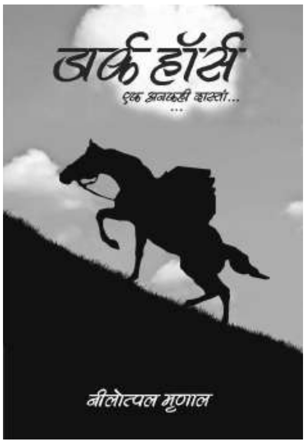

हम भलीभाँति परिचित हैं कि 'इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसेज' भारत की तमाम प्रतियोगी परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे अधिक प्रतिष्ठित है। प्रतिवर्ष नौ से दस लाख के करीब अभ्यर्थी परीक्षा में बैठते हैं, किन्तु सफलता केवल एक हज़ार को ही नसीब होती है। इस सफलता के लिए कितने ही सालों का संघर्ष, रिश्ते-नातों से दूर, पैसे जुटाने के लिए माँ-बाप की दिन रात की मशक्कत के बाद मंजिल मिलती है। इसी संदर्भ में लेखक उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं "यह एक ऐसी जमात की कहानी है, जिनके साकार सपनों की चमक तो सब देखते हैं और उनके लिए प्रशस्तियाँ भी लिखी जाती हैं, लेकिन इस सपने को हकीक़त में बदलने के बीच वे कितने पहाड़ चढ़ते हैं, कितने दरिया पार करते हैं, कितने पाताल धँसते हैं और कितने रेगिस्तान भटकते हैं, इसे शायद बहुत कम लोग जानते हैं।"[1]

एक आईएएस अभ्यर्थी के रास्ते पर चलने से लेकर मंजिल तक पहुँचने के सफ़र को बयाँ करता 'डार्क हॉर्स' उपन्यास अपने आप में अद्वितीय है। इस तरह के कथानक को लेकर लिखा गया संभवत: यह पहला उपन्यास है। विशेष बात यह है कि पूरा का पूरा उपन्यास लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित है। लेखक ने स्वयं आईएएस की तैयारी के लिए अपनी उम्र का वह भाग, जिसमें आदमी के भीतर आसमान छूने की पुरजोर इच्छा होती है, को मुखर्जी नगर (दिल्ली) की उन गलियों में गुजार दिया जहाँ हर साल हज़ारों नये-पुराने सपने बनते-बिगड़ते हैं। लेखक ने इन्हीं उधड़ते-बुनते सपनों की कहानी को अपने अनुभव के ताने-बाने से बुना है। एक आईएएस अभ्यर्थी के सालों के संघर्ष और यथार्थ को परत दर परत उकेरने में यह उपन्यास सफ़ल साबित हुआ है।

आईएएस का नाम सुनते ही हमारी आँखों में न जाने कितने बड़े-बड़े सपने गोते खाने लगते हैं। पावर, पैसा और सामाजिक प्रतिष्ठा की नींव पर बनी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ सामने खड़ी हो जाती हैं। भारत के कोने-कोने से मुखर्जी नगर में आने वाले अमीर- गरीब सभी तबके के हज़ारों आईएएस अभ्यर्थियों की आँखों में बहुत सपने होते हैं। ऐसे सपने जिनसे अपने ही नहीं बल्कि कई पीढ़ियों के कल्याण के रास्ते भी खुल जाते हैं। माँ-बाप के साथ-साथ पूरे गाँव को गौरवान्वित करने का दायित्व भी वे अपने साथ लाते हैं। कई सफ़ल हो जाते हैं और कई मुखर्जी नगर के मायाजाल से खुद को बचा पाने में असफ़ल हो जाते हैं। एक और परिवार का दबाव दूसरी ओर व्यापक पाठ्यक्रम और बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण बेरोजगारी जैसी समस्याएँ भी अभ्यर्थियों पर मानसिक दबाव बनाए रखती हैं, जिसके कारण वे तनावग्रस्त हो जाते हैं और अपने लक्ष्य से भटकने लगते हैं। ऐसे में उनके अटेम्प्ट और उम्र दोनों ही धीरे-धीरे खत्म होने की कगार पर आ जाते हैं, लेकिन समय रहते जिसने खुद को सम्भाल लिया और मेहनत की भट्ठी में खुद को झोंक दिया वही यहाँ का सिकंदर बनता है। इसके साथ ही कई लोगों की रूचि या इच्छा कुछ और करने की होती है, लेकिन वे अपने माँ-बाप या अभिभावकों के दबाव में आकर यहाँ चले तो आते हैं पर घर खाली हाथ ही लौटते हैं, लेकिन जब ऐसे लोग अपने-अपने रुचि क्षेत्र में उतरते हैं तो कामयाबी के आसमान में उन्मुक्त होकर उड़ते हैं। ऐसे ही पंछियों की कहानी है 'डार्क हॉर्स'।

'डार्क हॉर्स' अंग्रेजी का शब्द है, जिसका अर्थ है घोड़ों की रेस में शामिल वो घोडा, जिस पर कोई भी दाँव नहीं लगाता और न ही किसी को उसके जीतने की कोई उम्मीद होती है, लेकिन रेस के अंत में वही घोड़ा विजयी बनता है और इस घोड़े को 'डार्क हॉर्स' की संज्ञा दी जाती है। कथा के केंद्र में संतोष कुमार सिन्हा, कृपाशंकर राय, गुरुराज सिंह, जावेद, विमलेन्दु यादव और मनोहर हैं। इनमें से संतोष को छोड़कर बाकी सब आईएएस की साधना

नगरी मुख़र्जी नगर में लगभग तीन-चार साल से साधनारत हैं। संतोष बिहार के भागलपुर जिले से है और उसके पिता विनायक बाबू एक प्राइमरी स्कूल में मास्टर हैं। संतोष कृपाशंकर के कहने पर दिल्ली आईएएस की तैयारी के लिए आता है। उम्र से पहले आते हुए बुढ़ापे तथा झड़ते हुए बाल के कारण लोग कृपाशंकर को आदर से रायसाहब पुकारते थे। कृपाशंकर किसान परिवार से हैं। जावेद के पिता बचपन में ही चल बसे। घर में बीमार माँ है, जिनकी देखभाल चाचा-चची के जिम्मे है। विमलेन्दु, गुरुराज तथा मनोहर भी आम किसान परिवार से हैं। रायसाहब और उनके मित्र जन मिलकर संतोष के सेट होने में मदद करते हैं। नए विद्यार्थियों के लिए यहाँ सेट होने के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण काम कोचिंग ढूंढने का होता है। कोचिंग के मामले में लेखक ने यथार्थ को बड़ी बेबाकी से चित्रित किया है। संतोष के कोचिंग चुनने के मसले पर विमलेन्दु कहता है, "पर ये तो मानना होगा कि यहाँ कुकुरमुत्तों की तरह उगे कोचिंग में क्वालिटी नहीं है। कुछ को छोड़कर बाकी सब खाली मायाजाल फैलाए हुए हैं।"[2]

मुखर्जीनगर आने वाले अभ्यर्थियों के अभिभावकों की सामान्यत: यही सोच रहती है कि यहाँ के बच्चे रात-दिन कमरे में बंद रहकर पढ़ते हैं, लेकिन जब वे मायानगरी के मायाजाल को देखते है भौचक्के रह जाते हैं। लेखक लिखते हैं, "मुख़र्जीनगर और आईएएस के लड़कों की तैयारी को लेकर जो खाँटी गंभीर टाइप कल्पना कर रखी थी; उससे वास्तविक मुखर्जी नगर का चेहरा अलग था। यहाँ लोग शाम को घूमते-फिरते, हँसते-मिलते थे। रंग-बिरंगे कपड़े पहने थे, ठिठोली और बहस सब चल रहा था। जबकि मनोहर के चाचा जैसे लोगों की कल्पना थी कि ये कोई ऐसी जगह होगी जहाँ लड़के रात-दिन कमरे में बंद बस पढ़ते होंगे। उन्हें लगता था कि हर आदमी शंकराचार्य की तरह सर मुड़ाए होगा या रविन्द्रनाथ टैगोर की तरह दाढ़ी बढ़ाए होगा। यहाँ के शिक्षक गुरु द्रोण की भाँति तेज से भरे होंगे। हर छात्र एक अर्जुन होगा और सब मछली की आँख फोड़ने के प्रयास में लगे होंगे। कुछ ऐसी ही कल्पनाओं से भरा होता था। पर यहाँ वास्तव में ऐसा तो था नहीं। हाँ, यहाँ कई अर्जुन अपनी-अपनी मछली के साथ बत्रा विहार करते भले दिख जा रहे थे।"[3]

आईएएस अभ्यर्थी मुखर्जीनगर आते तो बहुत ही जोश और उत्साह के साथ हैं, लेकिन यहाँ सालों से अपना दबदबा बनाए सीनियरों की पार्टीखोरी और घूमने-फिरने जैसे नियमित कार्यक्रमों की ओर आकर्षित होने से खुद को बचा पाने में असमर्थ होते हैं। जिससे उनका जोश और उत्साह धीरे-धीरे ठंडा पड़ता जाता है। शुरू-शुरू में संतोष भी इस जाल में उलझ जाता है, लेकिन समय रहते वो इस जाल से खुद को निकाल लेता है और अपने आप को सबसे दूरकर दिन-रात मेहनत करता है। लगातार दो बार असफल होने के बाद उसे अपने माँ-बाबू का चेहरा नजर आता रहा, उनकी पैसा जुटाने की दिन रात की कोशिशें उसे कचोटती रहीं और यही कारण था की उसकी इसी चिंता की परिणति एक आईपीएस ऑफिसर के रूप में हुई। स्पष्ट है कि लेखक यहाँ यही कहना चाहता है कि यदि हम अपने माता-पिता की अपने बच्चों को आगे बढ़ाने की मेहनत और कोशिशों को याद करते रहें तो हमें प्रतिदिन परिश्रम करने की प्रेरणा और उर्जा मिलती रहेगी।

लेखक ने उपन्यास में माध्यम को लेकर भी अपनी चिंता जाहिर की है। हमेशा से हिंदी माध्यम वालों को अंग्रेजी माध्यम वालों की अपेक्षा कमज़ोर और कम प्रतिभावान समझा जाता रहा है। आज भी यदि आप कई विषयों का ज्ञान रखते हैं, आपकी अभिव्यकि भाषा(चाहे हिंदी हो या अन्य भारतीय भाषाएँ) कितनी ही सशक्त हो, लेकिन अगर आप को अंग्रेज़ी नहीं आती तो समझिए आपका सारा का सारा ज्ञान धरा धराया रह जाएगा। उपन्यास में भरत के हिंदी मीडियम वालों को कम बेहतर कहने पर गुरु उसे कहता है, "किसी भी चीज़ के बारे में जानना समझना ज्ञान है। भाई साहब ! एक भाषा आपके द्वारा जाने और समझे गए बातों या ज्ञान को संप्रेषित करने व्यक्त करने का माध्यम भर ही तो है ना ! या अंग्रेज़ी में बोलना-लिखना ही ज्ञान है क्या ? . . .भाषा संवाद का माध्यम भर ही है और उसे वही रहने दीजिए।"[4]

उपन्यास की भाषा की बात करें तो इसकी भाषा भोजपुरी प्रधान हिंदी है। पात्रों की भाषा में जरा भी मिलावट नहीं है। जैसे-जैसे पात्र गुजरते हैं वैसे-वैसे उनके चित्र सामने बनने लगते हैं। खुदरा,बकलस,ओकाई,थोथन,किचाइन, कुटानी, पंछोछर, भौकाल आदि ग्रामीण शब्द भाषा को सहज व स्वाभाविक बनाते हैं।

अन्तत: रायसाहब के सभी अटेम्प्ट खत्म हो जाते हैं और वो वापस अपने गाँव चले जाते हैं। संतोष अपने आप को सबसे दूर कर जी जान से तैयारी में जुट जाता है और आईपीएस बनता है। विमलेन्दु दूसरे अटेम्प्ट में ही आईएएस बन जाता है। जावेद का चयन बिहार लोकसेवा आयोग में हो जाता है। मनोहर एक बड़े सीमेंट व्यापारी के रूप में ख्याति प्राप्त करता है और गुरु एक राष्ट्रीय पार्टी के अध्यक्ष के रूप में जनता का नेतृत्व करता है। ये सभी अपने-अपने रास्ते चुनते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं। लेखक यही कहना चाहता है कि आपके पास कई रास्ते हैं; बस आपको किस रास्ते पर और कैसे दौड़ना है, इसका पता होना चाहिए; अंतत: आप रेस के 'डार्क हॉर्स' अवश्य साबित होंगे।

सन्दर्भः 1. मृणाल,नीलोत्पल, डार्क हॉर्स, हिन्द युग्म पब्लिकेशन दिल्ली 2017, पृ.-5;
2.वही, पृ-65;
3.वही,पृ-3;
4.वही, पृ-91

सम्पर्क: शोधार्थी,हिंदी-विभाग,पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

खानवा का युद्ध और मेवाती

□ सिद्दीक अहमद 'मेव'

भारत के मध्यकाल के इतिहास के बारे में आधुनिक काल की शासन-सत्ताओं ने बहुत सी भ्रांतियां फैलाई। पूरे मध्यकाल को ऐसे प्रस्तुत किया गया जैसे कि यह युग हिंदू और मुस्लिमों के बीच युद्ध का युग है। जबकि हिंदू शासक दूसरे हिंदू शासक के खिलाफ, मुस्लिम शासक दूसरे मुस्लिम शासक के खिलाफ, हिंदू शासक मुस्लिम शासक के खिलाफ या मुस्लिम शासक हिंदू शासक के खिलाफ लड़ाई का इतिहास भरा पड़ा है। लेकिन ये भी सही है कि ये युद्ध कोई धर्म के लिए नहीं लड़े गए थे, बल्कि इनके कारण विशुद्ध राजनीतिक थे। तत्कालीन शासक अपने राज्य के विस्तार के लिए लड़ते थे और यद्धों का खामियाजा साधारण जनता को भुगतना पड़ता था, चाहे वह किसी भी धर्म से ताल्लुक रखती हो। पानीपत की पहली लड़ाई इब्राहिम लोदी और बाबर के बीच हुई थी और दोनों इस्लाम से ताल्लुक रखते थे। अपना राज्य स्थापित करने के लिए बाबर ने कई युद्ध जीते। उसमें एक युद्ध खानवा का था, इस युद्ध में शामिल सेनाओं के धर्मों से अनुमान हो जाएगा कि किस तरह से धार्मिक विद्वेष पैदा करने के लिए इतिहास की घटनाओं को एकांगी तरीके से प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत है सिद्दीक अहमद मेव का यह लेख—सं.

खानवा का युद्ध मैदान। एक तरफ थी अफगानों, तुर्कों और तातारियों से सुसज्जित बाबर की सेना, तो दूसरी और थी राजपूतों और मेवों की संगठित शक्ति की प्रतीक महाराणा सांगा की सेना। कई दिनों से दोनों ओर की सेनाएं एक-दूसरे के सामने खेमा डाले पड़ी थी, मानो एक-दूसरे के संयम की परीक्षा ले रहीं हैं।

मगर 15 मार्च, 1527 ई. को सुबह लगभग ढाई घड़ी (लगभग दस या साढ़े दस बजे) सुबहे दोनों ही सेनाओं का संयम टूट गया और दोनों ओर से दहाड़ ने की आवाज, हाथियों की चिन्घाड़, तलवारों की झन्कार और तोपों की गरजन से खानवा की रणभूमि गूंजने लगी। घोड़ों की टापों, सैनिकों की गर्दिश और तोप के गोलों से उठे धूल और धूएं ने खानवा के आसमान को इस तरह घेरा कि दिन मे रात नजर आने लगी। राजपूती तलवारों और मेवाती खंजरों की मार ने जहाँ तुर्की सेना को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया, वहीं तुर्की तींरदाजों और तोपों की मार ने भरतीय सेना की पक्तियों मे हडकंप मचा दिया। युद्ध पूरे शबाब पर पहुंच चुका था। दोनों ओर से भीषण मार-काट मची थी। युद्ध मैदान सैनिकों की लाशों से पट चुका था इसके बावजूद एक-दूसरे के खून की प्यासी दोनों ओर की सेनाएं आगे बढ़-बढ़ कर एक-दूसरे पर हमले कर रही थी। इस युद्ध में पहली बार प्रयुक्त हो रही तोपों ने राजपूतों और मेव सैनिकों व हाथियों को चौंका दिया था। मगर राजपूत और मेव सैनिक भी पूरे जोश और साहस के साथ तुर्की सेनाओं को मुँह तोड़ जवाब दे रहे थे।

दिन ढल चुका था। युद्ध अपने चरम पर था। मैदान गर्द-ओ-गुबार से घिरा हुआ था। दोनों और की सेनाएं एक-दूसरे के साथ गुत्थम-गुत्था हो रही थी। एक बार तो लगा कि राजपूत और मेव सैनिक दुश्मन को पछाड़ देंगे। मगर तभी एक तीर राजपूत सेना के सेनापति महाराणा सांगा के सिर में लगा, जिससे वह बेहोश होकर हाथी के हौदे में गिर गया। उन्हें तुरन्त युद्ध मैदान से बाहर निकाल लिया गया ताकि उनका उपचार किया जा सके।

मगर अपने सेनापति को न देख राजपूत सैनिक हतोत्साहित होने लेगे। इसी समय सिलदिया सरदार अपने सैनिकों के साथ चलते युद्ध में 'पाला बदल' बाबर के साथ जा मिला। ऐसे हालात में राजपूत सैनिकों के पांव उखड़ने लगे। बाबर को अपनी विजय निकट नजर आने लगी। मगर तभी राजपूत सेना के दाँए भाग के सिपह सालार राजा हसन खाँ मेवाती आगे बढा और गिरती हुई राजपूत सेना की पताका को थाम लिया। उसने अपनी सेनाओं को ललकारा और पूरे जोश के साथ दुश्मन की सेनाओं पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। साथ ही अपने बारह हजार फुड़सवारों को दुश्मन की तोपों पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। मेवाती घुड़सवार आगे बढ़ने लगे। इधर राजपूतों ने भी अपनी निढ़ाल हो रही तलवारों को संभाल लिया। युद्ध ने एक बार फिर भीषण रूप

अख्तियार कर लिया। एक बार फिर तलवार से तलवार टकराने लगी। नेजे से नेजा भिड़ने लगा। तीरों की वर्षा और आग उगलती तोपों के बीच, घुड़सवार सैनिकों ने अपने जौहर का शानदार नमूना पेश करना शुरू कर दिया। ऐसा लगने लगा कि जल्द की राजपूतों और मेव सेनाएँ संगठित होकर दुश्मन की तोपों का मुंह मोड़ देंगी। मगर तभी तोप के एक गोले ने भारतीय इतिहास की दिशा ही बदल दी।

तोप का वह बेरहम गोला राजपूतों और मेव सेना के नये सेनापति, राजा हसन खाँ मेवाती के पास आकर फटा और इसके साथ ही वह महान मेवाती सपूत वीरगति को प्राप्त हुआ। मेवात रियासत के अन्तिम शासक के बलिदान के साथ ही प्रथम मुगल शासक का भाग्य बदल गया। मेवात रियासत के खण्डहरों पर महान मुगल साम्राज्य की नींव पड़ गई। बाबर भारत का सम्राट बन गया। उसने अपनी इस ऐतिहासिक विजय की खुशी में राजपूतों और मेव सैनिकों के कटे हुए सरों से एक मीनार बनवाई ताकि उसकी ताकत की धूम चारों दिशाओं मे सुनाई देने लगे।

खानवा की विजय के पश्चात् बाबर मेवात की और बढ़ा। दो पड़ावों के बाद वह मेवात की राजधानी अलवर पहुंचा। उसने अलवर का खज़ाना अपने सबसे छोटे बेटे मिर्जा हिन्दाल को सौंप दिया। इसके पश्चात् वह फिरोजपुर आया और 'झिरका' में पड़ाव डाला। यहाँ से वह कोटला झील देखने गया और शाम को वापिस फिरोजपुर लौट गया। बाबर ने मेवात के एक विद्रोही सरदार इल्यास खां को पकड़ कर जिन्दा ही उसकी खाल खिंचवाली। इसके बाद मेवात की कमान चिन तैमूर को सौंप वह चन्देरी की ओर चला गया।

खानवा के युद्ध ने भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रभाव डाला। मेवात का इतिहास तो खानवा की पराजय के पश्चात् ऐसा बदला कि आजतक भी मेवाती उस पराजय की टीस से उभर नहीं पाए हैं।

खानवा के युद्व से पहले और युद्ध के बाद बाबर ने मेवात में भारी तबाही मचाई। उसने भारी मार-काट की और सम्पूर्ण क्षेत्र में दूर- दूर तक आग लगवा दी। सैंकडों मेवाती गाँव तबाह व बर्बाद हो गये। हसन खाँ मेवाती के बलिदान के पश्चात् रियासत सदा के लिए समाप्त हो गई। क्योंकि बाबर ने मेवात को दिल्ली सूबे के अधीन सरकार आगरा, सरकार तिजारा और सरकार सहार में बाँट कर मेवात की संगठन शक्ति को सदा के लिए समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् मेवाती कभी अपनी अलग रियासत स्थापित नहीं कर पाये।

उधर बीकानेर के किले में महाराणा सांगा का देहान्त हो गया, जिससे राजपूत शक्ति को भारी धक्का लगा। चन्देरी के मेदनी राय को पराजित कर बाबर ने 'रही-सही कसर' भी पूरी कर दी।

मेवाड, मेवात और चन्देरी को पराजित करने के पश्चात् ही बाबर उस महान् मुगल साम्राज्य की नींव डालने मे सफल हो सका, जिसने लगभग सवा तीन सौ साल तक भारतीय उपमहाद्वीप पर अपना हरा और सुनहरी झण्डा फहराये रखा।

सम्पर्क: 9813800164

व्यंग

शेर की गुफा में न्याय

□ शरद जोशी

जंगल में शेर के उत्पात बहुत बढ़ गए थे। जीवन असुरक्षित था और बेहिसाब मौतें हो रही थीं। शेर कहीं भी, किसी पर हमला कर देता था। इससे परेशान हो जंगल के सारे पशु इकट्ठा हो वनराज शेर से मिलने गए। शेर अपनी गुफा से बाहर निकला - कहिए क्या बात है?

उन सबने अपनी परेशानी बताई और शेर के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई। शेर ने अपने भाषण में कहा -

'प्रशासन की नजर में जो कदम उठाने हमें जरूरी हैं, वे हम उठाएँगे। आप इन लोगों के बहकावे में न आवें जो हमारे खिलाफ हैं। अफवाहों से सावधान रहें, क्योंकि जानवरों की मौत के सही आँकड़े हमारी गुफा में हैं जिन्हें कोई भी जानवर अंदर आकर देख सकता है। फिर भी अगर कोई ऐसा मामला हो तो आप मुझे बता सकते हैं या अदालत में जा सकते हैं।'

चूँकि सारे मामले शेर के खिलाफ थे और शेर से ही उसकी शिकायत करना बेमानी था इसलिए पशुओं ने निश्चय किया कि वे अदालत का दरवाजा खटखटाएँगे।

जानवरों के इस निर्णय की खबर गीदड़ों द्वारा शेर तक पहुँच गई थी। उस रात शेर ने अदालत का शिकार किया। न्याय के आसन को पंजों से घसीट अपनी गुफा में ले आया।

शेर ने अपनी नई घोषणाओं में बताया - जंगल के पशुओं की सुविधा के लिए, गीदड़ मंडली के सुझावों को ध्यान में रखकर हमने अदालत को सचिवालय से जोड़ दिया है, ताकि न्याय की गति बढ़े और व्यर्थ की ढिलाई समाप्त हो। आज से सारे मुकदमों की सुनवाई और फैसले हमारी गुफा में होंगे।

इन्सानियत ही ख़ुदा की इबादत

प्रोफेसर श्रवण कुमार सेठी का अचानक हमारे बीच से चले जाना बेहद दुखदायी है। 'देस हरियाणा' के प्रति उनका विशेष लगाव इस तरह था कि वे हमेशा पत्रिका की बेहतरी के लिए निरंतर सुझाव देते थे और पत्रिका की जरुरत का एहसास कराते हुए हमें हिम्मत देते थे। पत्रिका मिलते ही टेलीफोन के जरिए उनकी प्रतिक्रिया हमारे लिए टॉनिक की तरह होती थी। 'देस हरियाणा' पत्रिका के लिए पंजाबी कवि उस्ताद दामन पर लेख लिखा। उनकी अनुभवसिक्त व हौसलादायी सीख 'देस हरियाणा' की टीम के लिए पूंजी है। उनका सामाजिक व्यक्तित्व हमेशा ही प्रेरणा देता रहेगा। ऐसी शख्सियत को 'देस हरियाणा' टीम का नमन।

- संपादक

प्रोफ़ेसर श्रवण कुमार सेठी का जन्म 25 जून 1938 को गाँव तलागंग (ज़िला चकवाल) जो आज पाकिस्तान में है, में हुआ था। माता श्रीमती जीवनी देवी एवं पिता श्री संत राम के इस सुपुत्र के जीवन का सफ़र 30 अप्रैल 2018 पूरा हुआ। इन के पिता बंटवारे के बाद सांपला आ गये थे, जहाँ वे सरकारी स्कूल में अध्यापक रहे । बाद में उन का तबादला दुजाना हो गया । इस लिए सेठी साहब की स्कूली शिक्षा सांपला और दुजाना में हुई। गवर्नमेन्ट कॉलेज, रोहतक से बी.ए. के बाद बैचलर ऑफ टीचिंग की डिग्री प्राप्त करने पर इन्होंने सरकारी स्कूल, दुजाना में अध्यापन शुरू किया। अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने के मकसद से छुट्टी ले कर वे अलीगढ़ विश्वविद्यालय से भूगोलशास्त्र में एम.ए. के लिए गए और तदुपरांत 1970 में पदोन्नत हो कर कॉलेज काडर में आने के बाद विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों में सेवारत रहे। 1996 में वे गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑव एजुकेशन, भिवानी से सेवानिवृत्त हुए।

Prof. S.K.Sethi (1938-2018)

सेठी साहब बहुआयामी व्यक्तित्व के मालिक थे। वे न केवल एक कुशल शिक्षक थे बल्कि एक बहुत अच्छे पाठक भी थे। उन्हें नई-नई पुस्तकें पढ़ने का ही नहीं, पुस्तकें ख़रीदने का भी शौक था। उन की रुचि केवल अपने विषय तक ही सीमित नहीं थी बल्कि वे हर तरह के अच्छे साहित्य को भी गम्भीरता से पढ़ते थे। उन्हें हिन्दी साहित्य के साथ-साथ अंग्रेज़ी और उर्दू अदब की भी अच्छी ख़ासी जानकारी थी। अमेरिकन साहित्य और आलोचना की किताबों तक उन की पहुँच रही। बाबा बुल्लेशाह के वे मुरीद थे। उर्दू अदब में उन्हें मीर, ग़ालिब, ज़ौक़, फ़ैज़, हबीब जालिब और आबिद आलमी जैसे शायर बेहद पसन्द थे। एक ख़ूबी उन में यह भी थी कि अच्छे साहित्य में रुचि रखने वाले मित्रों-परिचितों के साथ वे ख़ुद पढ़ा और परखा हुआ साहित्य साझा करते और उस पर बातचीत करते थे।

अच्छा साहित्य पढ़ने का उन का यह शौक अच्छा लिखने तक भी पहुँचा। उन्होंने 'देस हरियाणा' पत्रिका के लिए पंजाबी कवि उस्ताद दामन पर लेख लिखा और अपने एक प्रिय अनुज के साथ मिल कर मशहूर उर्दू लेखक पतरस के मज़ाहिया लेखों का देवनागरी में लिप्यांतरण किया।

सेठी साहब न केवल एक नेक इन्सान थे बल्कि एक भरोसेमन्द सलाहकार भी थे। आज के युग में सेठी साहब पर इक़बाल का यह शे'र पूरी तरह लागू होता है :

ख़ुदा तो मिलता है, इन्सान ही नहीं मिलता ये चीज़ वो है कि देखी कहीं-कहीं मैंने। ख़ुदा में उन का यकीन था कि नहीं, यह तो नहीं मालूम लेकिन यह निश्चित है कि वे इन्सानियत को ख़ुदा की इबादत मानते थे। वे एक ऐसी दुनिया की कामना करते थे जहाँ इन्सान सोने-चांदी से नहीं बल्कि इन्सानियत की अनमोल दौलत से परखे जाएँगे।फ़िल्म 'फिर सुबह होगी' के गीत के ये बोल उन्हें बहुत अज़ीज़ थे :

माना कि अभी तेरे मेरे अरमानों की क़ीमत कुछ भी नहीं
मिट्टी का भी है कुछ मोल मगर इन्सानों की क़ीमत कुछ भी नहीं
इन्सानों की इज़्ज़त जब झूठे सिक्कों में न तोली जाएगी
वो सुबह कभी तो आएगी, वो सुबह कभी तो आएगी।

अच्छाई करना सेठी साहब के ख़ून में था। उन्होंने कितने ही बच्चों को अलग से भी पढ़ाया लेकिन मजाल है कि एक भी पैसा कभी ट्यूशन का लिया हो। कितने ही ग़रीब होनहार विद्यार्थियों की कॉपी-किताब से मदद की। वे अच्छाई की अहमियत जानते थे लेकिन मक्कारों की मक्कारी की फ़ितरत से भी भली-भांति परिचित थे। वे भले -बुरे की परख करना ख़ूब जानते थे।

उन का स्वभाव सौम्य, मृदु और सर्वप्रिय था। जिस से भी मिलते, बड़ी आत्मीयता से मिलते। होंठों की मुस्कान आगे बढ़ कर मित्रों और आगंतुकों का स्वागत करती थी। बच्चों से मज़ाक़ और हल्की-फुल्की छेड़छाड़ कर के उन्हें हंसाते थे। निजी सेवादारों को जब भी सम्बोधित करते तो उन के नाम के साथ 'जी' अवश्य लगाते थे।

मित्र बनाने की कला के वे धनी थे। बढ़ती उम्र के साथ पुराने मित्र छूटते जाते हैं और नए बनाना आसान नहीं होता। लेकिन सेठी साहब इस मामले में अपवाद थे। वे जहाँ भी गए, नए मित्र बना कर आए। उन के मित्रों की संख्या में हर वर्ष बढ़ोतरी होती रहती थी। जिस किसी परम मित्र का भाई-बहन यहाँ आता, वे उसे मिलने की, उस का हाल-चाल पूछने की चेष्टा करते। इस प्रकार उन का सम्बन्ध न केवल एक मित्र से बल्कि उस के सम्पूर्ण परिवार, माता-पिता और भाई-बहनों से गहरा होता चला जाता था।

सेठी साहब यारों के यार थे। अपने मित्रों से मिलकर वे बहुत प्रसन्न होते थे। हर प्रकार से उन की सहायता करने को तत्पर रहते थे। वे छोटी-छोटी बातों में भी ख़ुशी महसूस करते थे। राह चलते मित्रों संग किसी खोखे पर गिलास में कड़क चाय पी कर ख़ुश हो जाते थे। किसी दरख़्त के नीचे ढाबे पर दाल मखनी और रोटी के खाने को किसी पांच-सितारा होटल के बुफ़े से ज़्यादा ऊंचा समझते थे।

श्रवण सेठी जी एक बहुत भरोसेमन्द सलाहकार थे। उन से सलाह लेने वालों का तांता लगा रहता था। लोग उन से स्वास्थ्य और आर्थिक मुद्दों पर, ब्याह-शादी के सिलसिले में, बच्चों को आगे क्या करवाएँ आदि-आदि अनेक मसलों पर परामर्श करने के लिए आते रहते थे। होम्योपैथी में उन की गहरी दिलचस्पी थी। उन्होंने उपचार-सम्बन्धी होम्योपैथी की दर्जनों किताबें पढ़ डाली थीं। घर में होम्योपैथी की चलती-फिरती डिस्पेन्सरी सी खोल रखी थी। यह सेवा वे अपनी जेब से ख़र्च कर के मुफ़्त किया करते थे।

सेठी साहब की तीव्र इच्छा थी कि वे पाकिस्तान अपने गाँव हो कर आएँ। एक बार 2004 में गांधी पीस फ़ाउंडेशन के न्योते पर पाकिस्तान से शांति प्रेमियों का एक जत्था जालंधर आ रहा था और हरियाणा से कुछ लोग उन की अगुवाई करने जालंधर गए थे, जिन में सेठी साहब भी शामिल थे। चार दिन जालंधर रुके। बदले में शांतिदूत बन कर पाकिस्तान जाना था मगर वीज़ा नहीं लग पाया। लेकिन सेठी साहेब बाद में अपने एक मित्र के पारिवारिक आयोजन में शामिल होने लाहौर गए और अपने गाँव भी हो कर आए।

गीत-संगीत के मामले में सेठी साहब सूफ़ियों की मस्ती में रंगे व्यक्ति थे। वे न केवल सूफ़ियाना और लोकगीतों के रसिया थे बल्कि अर्ध-क्लासिकी गीत-संगीत भी ख़ूब सुनते थे। किशोरीबाई अमोनकर की ठुमरी और दादरा के शौकीन सेठी साहब नुसरत फ़तेह अली ख़ान, रेशमा, आबिदा परवीन आदि सूफ़ी गायकों को यू-ट्यूब पर बार-बार सुनना और साझा करना पसन्द करते थे।

सेठी साहब निरन्तर विकासोन्मुखी रहते थे। वे हर समय कुछ न कुछ नया पढ़ने या नया सीखने को उत्सुक, गतिशील व्यक्तित्व के मालिक थे। उन्हें निष्क्रियता से चिढ़ थी। उन का जीवन न केवल परोपकारी था बल्कि वे सामाजिक सरोकारों के खुले पक्षधर थे और इसी लिए वे अपनी रुचि की सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं में सक्रिय भूमिका अदा करते थे। यह तथ्य इस से स्पष्ट है कि इन्टैक, सप्तरंग, ज्ञान विज्ञान समिति, आबिद आलमी यादगार समिति इत्यादि की गतिविधियों में वे निरन्तर रुचि लेते रहे और संस्थाओं को उन का आर्थिक सहयोग भी मिलता था। जब तक शरीर ने साथ दिया, किसी ज्वलन्त मुद्दे पर छोटे से छोटे जुलुस में भी शामिल होना शान की बात समझते थे। महिलाओं के मुद्दों पर वे जलसे-जुलूसों में शामिल रहते थे। वे कमज़ोर वर्गों के लिए न्याय के पक्षधर थे। सामाजिक बदलाव के काम को वे आज के युग की तपस्या कहते थे। अपने तरीके से सेठी साहब ने भी यह तपस्या की।

सेठी साहब का व्यक्तित्व बहुमुखी और दृष्टिकोण व्यापक तथा विस्तृत था। इसी लिए वे बहुत जल्दी विभिन्न वर्गों के साथ समस्वरता स्थापित करने में सक्षम थे। यही एक मुख्य कारण है कि उन की यह बहुआयामी रुचि सदा हमारी स्मृति की आधारशिला रहेगी।

सम्पर्क: 97294 - 71398

सावन की नायिका - कंवर निहालदे

□ अविनाश सैनी

मायड़ बरजै कंवर निहालदे जी,
ए बेट्टी बाग़ झूलण मत जाए, बागां मैं कहिए बेट्टा साहूकार का जी।
थारी तो बरजी मां मेरी ना रहूं जी,
ए जी कोए बाग़ झूलण इब जाएं, के ए करैगा बेट्टा साहूकार का जी।

सावन का महीना लगते ही हरियाणा के ग्रामीण-अंचल में जगह-जगह यह गीत गाया जाने लगता है। बरसात की रिमझिम फुहारों के बीच झूला झूलती हुई नवयौवनाएं जब यह गीत गाती हैं तो जैसे निहालदे के प्रसंगवश अपनी ही भावनाओं को अभिव्यक्त कर रही होती हैं। कंवर निहालदे हरियाणा की लोक नायिका रही है और उसकी प्रेम गाथा इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हुई है। निहालदे और नर सुलतान की प्रेम कहानी जनमानस में इतनी लोकप्रिय रही है कि उनके मिलन और विरह प्रसंगों पर महिलाओं ने अनेक लोकगीतों का निर्माण कर लिया। इन मल्हार गीतों को आज भी यहां की महिलाएं और युवतियां सावन के महीने में मस्ती से झूम-झूम कर गाती हैं।

निहालदे का सावन के महीने से घनिष्ठ संबंध रहा है। इसलिए 'कंवर निहाल देई' को सावन की नायिका भी कहा जाता है। कहते हैं कि केलागढ़ की राजकुमारी निहालदे का कीचकगढ़ के राजकुमार सुलतान से प्रथम मिलन सावन के महीने में ही हुआ था। शिकार खेलने गया सुलतान राह भटक कर राजा मघमान के जनाने बाग़ में पहुंच जाता है, जहां कंवर अपनी सखियों के साथ झूला झूल रही थी। सुलतान कंवर के रूप पर मोहित हो जाता है। उधर बाग़ में पराए मर्द को देख निहालदे की सखियां भाग खड़ी होती हैं। तब एकांत में कंवर और सुलतान एक दूसरे से मिलते हैं और प्रेमपाश में बंध जाते हैं। बाद में दोनों की शादी हो जाती है लेकिन परिस्थितियां ऐसी बन जाती हैं कि सुलतान को मजबूरन निहालदे को छोड़कर जाना पड़ता है। निहालदे और सुलतान के बिछोह का मार्मिक वर्णन हरियाणवीं लोकगीतों में मिलता है।

कथा के अनुसार जुदा होते समय सुलतान निहालदे को वचन देता है कि वह छह वर्षों बाद हरियाली तीज के दिन उससे आकर मिलेगा। निहालदे इसी मिलन की आस में छह सावन गुजारती है। इस दौरान वह अपने हृदय की व्यथा को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती है। जैसे ही सावन का महीना लगता है, निहालदे पति से मिलने को तड़प उठती है। सावन की रिमझिम फुहार, कोयल की कूक तथा मोर और पपीहे की मीठी बोली निहालदे की पीड़ा को और बढ़ा देती हैं। विरह की अग्नि में जलती निहालदे अपने हृदय की व्यथा को पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के सामने भी व्यक्त करती है और उनसे अनुनय-विनय करती है कि वे उसकी पीड़ा से सुलतान को अवगत करवा दें। निहालदे की व्यथा को दर्शाते यही विरह गीत हरियाणा में महिलाओं द्वारा बड़ी आत्मीयता से सावन के महीने में गाए जाते हैं।

वीरता, रोमांच, प्रेम और लोक मंगल की आदर्श भावना का सहज एवं भव्य संगम निहालदे-सुलतान की प्रेम कहानी के बारे में कहना कठिन है कि यह काल्पनिक है या ऐतिहासिक । दंतकथाओं के अनुसार कीचकगढ़ राज्य (वर्तमान के सोनीपत के समीप स्थित बताया जाता है) का राजा चकवाबैन काफी प्रतापी एवं प्रसिद्ध शासक हुआ है। सतनाली की खंडहर आज भी चकवा बैन की याद ताजा करते हैं। भाट उसकी वीरता, उदारता, न्यायप्रियता और कला प्रेम के किस्से गाते हैं। कहा जाता है कि सुलतान इसी राजा चकवाबैन का पौत्र था।

सुलतान के पिता राजा मैनपाल की असमय मृत्यु के बाद चकवाबैन ने उसे काफी लाड़-प्यार से पाला। लेकिन इस लाड़-प्यार ने सुलतान को बिगाड़ दिया और वह उद्दंड हो गया। न्यायप्रिय चकवा बैन ने उसकी उच्छृंखलताओं के दंड स्वरूप उसे बारह बरस का दसोटा दे दिया। सुलतान ने पितामह की आज्ञा का पालन कर नगर त्याग दिया और इंद्रगढ़ (वर्तमान इंद्री) चला गया। वहां वह चकवा बैन के मित्र कामध्वज के पास धर्मपुत्र बन कर रहने लगा। एक दिन वह कामध्वज के पुत्र फूलकंवर के साथ शिकार को गया और घूमते-घूमते केलागढ़ (वर्तमान करनाल) राज्य में पहुंच गया। वहीं उसकी मुलाकात कंवर निहालदे से हुई। उस समय सावन का महीना था और कंवर निहालदे उस समय अपने बाग़ में झूला झूल रही थी। हरियाणा में गाए जाने वाले एक सावन गीत में कंवर निहालदे के झूला-झूलने वाले दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

एक डस झूलैं बाहमण बणिए जी
ए जी कोए एक डस मुगल पठान,
बिचलैं हिंडोलै कंवर निहालदे जी।
रिम-झिम-रिम-झिम अम्मा मेरी मेंह पड़ै जी
ए जी कोए बरसै मूसलधार, पड़ी ए पंजाली हरियल बाग़ मैं जी।

पहली ही मुलाकात में दोनों में प्रेम हो गया और राजा केशव कामध्वज तथा कंवर के पिता राजा मघमान ने आपस में विचार-विमर्श कर दोनों का विवाह कर दिया। लेकिन फूलकंवर

इस विवाह से प्रसन्न नहीं था। वास्तव में निहालदे पर उसकी अपनी नजर थी। इसलिए उसने सुलतान को मारने की योजना बनाई ताकि सुलतान की मृत्यु के बाद निहालदे को अपना सके। लेकिन संयोगवश सुलतान को समय रहते इस योजना का बता लग गया और उसने तुरंत इंद्रगढ़ छोड़ देने का फैसला कर लिया। इंद्रगढ़ छोड़ने से पहले सुलतान ने कंवर को अपने पिता के घर भेज दिया। तब सुलतान के दसोटे के छह वर्ष शेष रहते थे। इसलिए उसने कंवर निहालदे से छह वर्ष बाद तीज क दिन मिलने का वचन दिया गया। इस क्षण का वर्णन एक लोकगीत में इस प्रकार किया गया है -

मरण मेरा बंध्या री बंधाया,
रह गया ए कांगणा।
पाषण फेरयां का चोला
रह गया ए सिर पै लाल।

इस प्रकार कंवर निहालदे छह वर्ष तक विरह की अग्नि में जलती और सुलतान को याद करके रोती रहती है। कथा के अनुसार सुलतान की याद उसे दिन रात सताती है। यहां तक कि रात को सोते समय भी कंवर का शरीर प्रिय मिलन की धूप छांव में तड़पता रहता है। इसी प्रकार के स्वप्न-दर्शन की चर्चा निहालदे अपनी बांदी ऊदा से करती है -

मेरी बांदी मन्नै सपना आया जळ झाणा
जणू लीला सा घोड़ा, अर घोड़े पै बेठ्या पातलिया असवार।
छैल छबीला ऐ पोता बैन का,
बांदी पांचों लग रे थे जरी लपेटे हथियार।

दूसरी और इंद्रगढ़ छोड़ने के बाद सुलतान ने महाराज नल के पुत्र राजा ढोलकंवर एवं रानी मरवण के राज्य नरवरगढ़ में नौकरी कर ली। उन दिनों नरवरगढ़ में लोकतापी त्रिप्रदेह दानव का आंतक छाया था। राजा ढोल कंवर सहित नरवरगढ़ की जनता उससे बेहद परेशान थी। सुलतान नरवरगढ़ में लोकतापी त्रिप्रदेह दानव को मौत के घाट उतार देता है। इसके बाद वह रानी मरवण को भूमिसिंह बणजारे के चंगुल से छुड़वाकर ढोल कंवर और मरवण पर अपनी बुद्धि व वीरता का सिक्का जमा देता है। इससे प्रसन्न हो मरवण उसे राज्य का सेनापति बनाने के साथ साथ अपना धर्म भाई भी बना लेती है। (नरवरगढ़ में रहते हुए ही सुलतान की मुलाकात जानी चोर से भी हुई बताते हैं। हरियाणवी जनमानस में उन दोनों की मित्रता और वीरता के किस्से काफी प्रचलित हैं।)

इस प्रकार सुलतान को नरवरगढ़ में रहते हुए छह वर्ष बीत गए। लोकश्रुतियों के अनुसार सावन का महीना लगते ही निहालदे के धैर्य ने जवाब दे दिया। सुलतान को ढूंढने और उस तक अपने मन की बात पहुंचाने के लिए विरह की मारी कंवर 84 परवाने लिखती है। वह ये परवाने भाटों को देकर उन्हें जा-जाकर अलग-अलग दिशाओं में भेज देती है। निहालदे के ये दूत उसके मार्मिक प्रेम पत्रों को हर राज्यों में जा-जाकर गाते हैं ताकि कहीं पर सुलतान उन्हें सुन ले और अपने वचन को याद कर वापिस लौट आए। लोकगीतों में कंवर की इस विरह वेदना का बहुत ही सजीव चित्रण किया गया है। इसी की बानगी है एक लोकराग की ये पंक्तियां -

हंसा नै समंदर छा लिए, कूंजा नै छाए परबल ताल,
चंदा छाया काळी बादळी, जोवण नै छा ली कंवर निहाल
और घणेरी मारू के लिखूं आज भरे समंदर ज्यूं उठैं झाल,
जळ कै मरूंगी तरणी तीज नै, तेरे पै हो बालम नै घाल।

जैसा कि इस लोकराग में वर्णन किया गया है, निहालदे ने सुलतान के न आने की स्थिति में तीजों के दिन जिंदा जल कर मरने की सौगंध खा ली। कथा में एक स्थान पर ऐसा प्रसंग भी आता है कि निहालदे को भाटों से सूचना मिल जाती है कि सुलतान मरवण के यहां रह रहा है। वह सुलतान व मरवण के संबंधों को गलत समझ बैठती है और उसे अपनी सौत का दर्जा दे देती है। यहीं नहीं, एक परवाना लिखकर वह मरवण से अपने पति को छोड़ देने की विनती करती है। साथ ही क्षोभ व आक्रोश में आकर मरवण के राज्य पर बिजली गिरने और उसके पति ढोल को काले नाग द्वारा डस लेने की बददुआ भी देती है।

जब नरवरगढ़ में निहालदे का दूत निहालदे के परवाने को पढ़ता है तो मरवण सारी बात समझ जाती है और सुलतान को तुरंत केलागढ़ के लिए रवाना कर देती है। इधर तीज के त्यौहार पर जब सारी महिलाएं बागों में पींग बढ़ा रही थीं और निहालदे अपने पति की इंतजार कर अपनी चिता तैयार कर रही थी। जब उसे यकीन हो गया कि अब सुलतान नहीं आएगा तो हारकर वह चिता जलवा लेती है और उसमें बैठ जाती है ताकि अपने प्राणों का अंत कर इस विरह के दुःख से निजात पा सके। ठीक उसी समय सुलतान आकर उसे मूर्च्छावस्था में चिता से बाहर निकाल लेता है। दोनों का मधुर मिलन होता है और सुखद अंत के साथ ही इस लोकगाथा का भी समापन होता है।

महिलाओं द्वारा लोकगीतों के रूप में गायी जाने वाली निहालदे और सुलतान की यह गाथा स्त्री हृदय के सच्चे भावों को सहज रूप से अपने में समेटे है। इस क्षेत्र में यह कथा इतनी लोकप्रिय हुई है कि अनेक सांगियों ने इस पर सांग बनाए तथा जोगियों और लोक रागियों ने इस कथा को राग रूप में गाया। सावन की विरहिणी नायिका निहालदे के शाश्वत और अप्रतिम प्रेम की प्रतिमान यह लोकगाथा हरियाणवी जन जीवन का अभिन्न अंग रही है।

संपर्क - 9416233992

विक्रम राही की दो रागनियां

बेइमान ठग चोर लुटेरे करकै छल गद्दी पा गे
मेहनतकश तु रहया भ्रम म्हं इब तो आच्छे दिन आ गे।

आज किसे का काल किसे का झंडा ठाणा काम तेरा
तु उठया तेरा उठया पडौसी लिकड़ लिया यो गाम तेरा
घर की जगहां घरबार नहीं सूख लिया यों चाम तेरा
थोथे नारे आर झूठे वायदे लूट लेगे आराम तेरा
लीडर बहोत बणाकै देखे सारे ए फेर चूना ला गे...

जात -पात धर्म के देकै नारे भाई तै भाई लड़ा दिया
सब धरमा का देश सरोवर इन लीडरां नै सडा दिया
किस -किस के दिए लाल खपा सवाल सै यु बहोत बडा
यू म्हारा हीरो यू म्हारा नेता कद तक रहैगा अडया
थारी गई कमाई हिसाब कोए ना लूट लूटकै धन खा गे...

बहू बेटी की इज्जत कोन्या दिन और रात तबाही सै
आठ तै लेकै बारह घंटे मजदूर की कित कमाई सै
सबका पेट पालकै नै किसान नै फांसी खाई सै
नौजवान फिरै मारे -मारे नहीं नौकरी थ्याई सै
इन लीडरां के प्रर्पच के इतने क्यूँ ठाढे तागे...

मैहनत आल्यो नित मेहनत की रोटी खावण आळे तम
बेईमानां के किस तरइयां बणे झण्डे ठावण आळे तम
चोर जार ठग बदमाशां के बणो गंडे लावण आळे तम
विक्रम राही न्यु कहरया बणो सच के गावण आळे तम
छोड़ बात के दादा गा गया वै बेमतलब का सब गा गे

मैं के बोलूं बाबा जी बस बात समझ या आई ना
तेरी बातां मैं बाबू की सूं लागी कती सच्चाई ना

तु सट्टे के दे नम्बर तेरे भगत भतेरे आवें सैं
तेरे दिए नम्बरां पै वै खुलकै सट्टा लावै सैं
जै इसी तिजोरी लेरया सै तनै खुद क्यूँ करी कमाई ना।

कुण्डली मिलवावै ना तो अमांगलिक बतलावै
ब्याह तो उनका भी होणा जो दर तै तेरे खाली जावै
तेरी कुण्डली कडै गई ब्याह होया हुई सगाई ना।

तु टयूबवैल लगवावै आर मीठा पाणी बतलावै
पर खीर कै नीचै घाल्या ना मीठा समझ मैं आवै
क्यों माटी कुटवावै के या मुर्खताई ना।

तु भूत जिन्न नै काटै मनचाहा प्यार दिवावै सै
तेरी खुद की हालत बाबा तेरा हिसाब बतावै सै
क्यूँ खामखा भ्रमावै सै बेवकूफ यू विक्रम राही ना।

संपर्क - 9813110204

भूपसिंह 'भारती' के हाइकू - गाँव

सेवा सत्कार
अर गाँव म्ह प्यार
मिलै संस्कार।

ना तेर मेर
ना छल कपट सै
ना हेर फेर।

बड़ पीपल
नीम की त्रिवेणी दे
छाया शीतल।

थी कच्ची पोली
थी कच्ची गली नाली
थी कच्ची डोली।

यो गाँव न्यारो
आपसी भाईचारो
मिलै सहारो।

बड़े गुमानी
ये करै वोहि सै जो
मन म्ह ठानी।

सांझ सवैरे
हो मीठो कलरव
गोधूली घेरै।

सै भोले भाले
गामआले निराले
सै मतवाले।

खेत कमावै
ये पसीना बहावै
ये हांसै गावै।

संपर्क - 9416237425

मनजीत भोळा की दो रागनियां

चीख-चीखकै गळे सूखगे कोए सुणता ना आवाज़ रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

आच्छे समय के सपन्यां नै कर दिए ब्योंत कुढाळे रै
सांझ धूंधळी हो थी पर इब दिन भीम्हारे काळे रै
खेतां म्ह हाड़ गळावणिए ना चढ़ावा खावण आळे रै
हाम जाणां ज्यब दर्द किसा हो पायां के फूटैं छाळे रै
हक नहीं म्हारा दे सकता तै छोडकै कुरसी भाज रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

कदे मंडी कदे फंडी लूटते के लुटणा ए तकदीरां म्हं
वैं भी तै म्हारे रहते कोन्या जो बिठा दिए वज़ीरां म्हं
गरमी सरदी चौमासा गुजरै कपड़े झीरम झीरां म्हं
रोम रोम म्हारा जकड़या सै रै कर्जे की जंजीरां म्हं
भा ठीक जै मिलै फसल का कुण माफ करावै ब्याज रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

मेहुल माल्या कोठारी ना हाम नीरव मोदी बरगे रै
खज़ाना खाली करकै देस का बिदेसां में डिगरगे रै
कित जावां हाम कड़ै ठिकाणा सोच सोच कै डरगे रै
मेहनतकश कई इस्सै चिन्ता में आत्म हत्या करगे रै
जिसमें जीणा मुश्किल होज्या चाहिए ना इसा राज रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

खुद नै खेवैया वो समझै सै जिसनै देखी नैया ना
गऊ रक्षक इसे बणे फिरैं सैं जिनके घर में गैया ना
हम सीधी सादी बात करणीए जाणां छंद सवैया ना
म्हारी वेदना गाण की हिम्मत रखता कोए गवैया ना
मनजीत भोळा साजबाज की कलम नहीं मोहताज़ रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

खंजर बरछे भाले ना त्रिशूल होणे चाहिएं
फूलां बरगे हाथां म्हं बस फूल होणे चाहिएं

नन्ही उम्र के आस पास रै नरम खिलौणे रहण द्यो
बारिशां के पाणी म्हं कागज़ की कश्ती बहण द्यो
धूप छाँव के हथकंडे सब खेल खेल म्हं सहण द्यो
तोतळी सी बोलियाँ नै परियां के किस्से कहण द्यो
बाळक सारे मस्ती म्हं मशगूल होणे चाहिएं
फूलां बरगे हाथां म्हं बस फूल होणे चाहिएं

भारत का इतिहास कहै, के पाया खून खराब्याँ म्हं
रंग लहू का करो ना शामिल कुदरती गुलाबां म्हं
बचपना मत डुबोकै मारो मज़हब की शराबां म्हं
मुल्क तरक्की कर सकै ना उळझे बिना किताबां म्हं
मन्दिर मस्ज़िद भोत हुए इब स्कूल होणे चाहिएं
फूलां बरगे हाथां म्हं बस फूल होणे चाहिएं

प्रत्येक सभ्यता आँसू बहावै, देख जरा इनसान रै
लड़ाई झगड़ा युद्ध नहीं समस्या का समाधान रै
कोए मीरा कोए बणै कबीरा कोए बणै रसखान रै
समता का संदेश फेर दे सबतै हिन्दोस्तान रै
धर्म बाद म्हं पहल्यां माणस कुबूल होणे चाहिएं
फूलां बरगे हाथां म्हं बस फूल होणे चाहिएं

जिस माट्टी तै चिलम बणै उसतै ए गढ़ी सुराही जा
कारीगर की कला कितै बिसराही और सराही जा
शब्दां तै आग लगाई जा, शब्दां तै आग बुझाई जा
मनजीत भोळा निम्न स्तर की करी नहीं कविताई जा
किसा ए लिखो पर लेखन के भी उसूल होणे चाहिएं
फूलां बरगे हाथां म्हं बस फूल होणे चाहिएं

संपर्क - 9034080315

लोक कथा - सोंद्या कै तो काटड़े ही जाम्मैं

एक गाम म्हं दो पाळी आपणे डांगर चराया करदे। एक रात नै दोनों की म्हैस ब्याण का सूत बेठग्या। उनमैं जो आलसी था वो बोल्या भाई मैं नींद काढल्यूं। मेरी म्हैंस नै संभाळ लिए।

दूसरा बोल्या - ठीक है भाई सो ले।

इसा सूत बैठ्या अक दोनुआं की म्हैस एक टैम पै ब्यागी। सोण आळे पाळी की म्हैस नै तो काटड़ी दी अर जागण आळे की म्हैंस नै काटड़ा दिया। जागण आळा नै के कर्या कि उसकी काटड़ी तो आपणी म्हैस तळै ला दी अर काटड़ा जागण आळे के तळै।

जब वा सो के उठ्या तो उसनै कह्या अक भाई मेरे आळी नै तो काटड़ा दिया। तो जागण आळा बोल्या - हां भाई सोंद्या कै तो काटड़े ही जामें।

कलाकारों से संवाद

वर्तमान में साँग की दिशा और दशा

□ सीमा रानी

सांग हरियाणा के लोक-जीवन के मनोरंजन का माध्यम व सीख प्राप्त करने का जरिया है। हरियाणवी लोक जीवन सांग के किस्से कहानियों कथाओं से व्यक्तित्व भी ग्रहण करता रहा है। जहां सांग हरियाणा की सांस्कृतिक पहचान है वहीं सांग के कलाकार की कोई सार्वजनिक पहचान नहीं है। बदलते वक्त के साथ सांग विधा अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, लेकिन कुछ कलाकर अपने कला के प्रति प्रतिबद्धता या अपने व्यवसाय के कारण इस विधा को जिंदा रखे हुए हैं। एक ओर सांग में अभी तक पौराणिक किस्से कहानियों का बोलबाला है वहीं नवजीवन के अंतर्विरोध भी प्रस्तुत हो रहे हैं।

प्रस्तुत है पंजाब विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग की शोधार्थी सीमा रानी द्वारा लिये गए साक्षात्कार। इन साक्षात्कारों का मुख्य प्रयोजन साँग की आज की दिशा और दशा को लेकर है। साँग में महिला-पात्रों की भूमिका चूंकि मर्द कलाकार ही करते हैं, इन साक्षात्कारों में ऐसे कलाकारों की मनोदशा का रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है। ये साक्षात्कार एक सन्दर्भ-विशेष में लिए गये हैं। आशा है कि ये वार्तालाप पाठकों को साँग की अन्दरूनी दुनिया के बारे में कुछ बता पायेगा। प्रस्तुत है साँग से जुड़े हुए चार कलाकारों के साथ संक्षिप्त साक्षात्कार।

- संपादक

बेड़ेबन्द राजबीर से साक्षात्कार

(राजदीप सिंह हिसार से ताल्लुक रखते हैं। इन्होंने गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार से बी.टेक. की है। ये 2012 से साँग से जुड़े हुए हैं। इन्होंने साँग में अधिकतर 'बेडेबन्द' की भूमिका निभाई है और 2016 से साँग को डायेरक्ट भी कर रहे हैं। इन्हें हरियाणा की संस्कृति से बहुत लगाव है और साँग को पुनर्जीवित करने के लिए योगदान देना चाहते हैं। बहुत सारी मुश्किलों के बावजूद भी ये साँगी के रूप में अपने करियर को लेकर बहुत सकारात्मक हैं।)

सीमा रानी : आप साँग से कब से जुड़े हुए हो ?

राजबीर : 2012 से, पहले मैं रागिनी कम्पीटिशन में भाग लेता था। फिर जब यूथ फेस्टिवल में साँग होने लगे तो मैं साँग में भाग लेने लगा। अब मैं 2-3 साल से साँग को डायेरक्ट कर रहा हूँ।

सीमा रानी : आपके परिवार का क्या रिस्पोंस था, जब आपने उन्हें बताया कि आप साँग में पार्टीसिपेट करते हो?

राजबीर : कॉलज टाईम में तो इतना कोई विरोध नहीं किया पर जब मैंने कहा कि मैंने साँग को प्रोफेशन के रूप में लिया है तब उन्होंने काफी विरोध किया था। मेरे पिता जी आर्य समाजी हैं, वे साँग को बिल्कुल भी अच्छा नहीं मानते। उन्हें लगता है कि साँग में अश्लील भाषा का प्रयोग होता है जो कि हमारे समाज के लिए अच्छा नहीं है और साँग से कोई अच्छी शिक्षा भी नहीं दी जाती है, यह छोटी जाति वाले लोगों का काम है जो जाटों को शोभा नहीं देता।

सीमा रानी: ऐसे में आपने फिर साँग को ही अपने प्रोफेशन के रूप में ही क्यों चुना?

राजबीर : मैंने बी-टैक कर रखी है और अभी एम. टैक भी करूँगा तो पूरी तरह से मेरा करियर साँग पर ही नहीं टिका है। मुझे हरियाणवी कल्चर से बहुत लगाव है। मुझे व्यक्तिगत रूप से

हमेशा ऐसा लगता है कि हमारे कल्चर और जो लोक गीत और लोक थियेटर है उनके साथ न्याय नहीं हुआ है। दूसरा एक कहावत यह भी है कि पानी तो पुल के नीचे से ही गुजरेगा इसी तरह हम भी अपनी जड़ों की तरफ ही जाएंगे। जैसे फास्ट फूड कितना ही मशहूर हो गया है पर लोग अब जैविक की तरफ जा रहे हैं। वैसे ही चाहे सिनेमा, यू-ट्यूब, टेलीविजन, कितने भी प्रसिद्ध हो पर हमारा रुझान लोक की तरफ भी रहेगा। अब तो यह एन्टिक (पुराना) हो गया है। जैसे हम टेलीविजन और यू-ट्यूब पर तो कभी भी कुछ भी देख सकते है पर सीधा प्रसारण का आकर्षण अलग होता है। मैं साँग को लेकर काफी उम्मीद रखता हूँ कि साँग अपनी पहचान फिर से बना लेगा।

सीमा रानीः आप मुझे साँग के प्रफोर्मेटिव आस्पेक्टस के बारे में बताएंगे?

राजबीरः साँग की मण्डली को बेड़ा कहते हैं। इसमें दस से बारह कलाकार होते हैं। इनमें तीन से चार कलाकार वाद्य यंत्र बजाते हैं और जिन्हें साजिंदे कहा जाता है। वे ढोलक, खड़ताल, सारंगी, हारमोनियम ये सब बजाते हैं। वैसे जगह-जगह का भी फर्क होता है पर वाद्य यंत्रों में ज्यादा विभिन्नता नहीं है। जो मण्डली का मुखिया होता है उसे बेड़ेबन्द कहते हैं। वह अधिकतर मुख्य नायक का रोल करता है वही साँग को डायरैक्ट करता है। वह रागिनी व डायलॉग कम्पोज़ करता है। साँग का विषय अवसर को देख कर निर्धारित होता है। जैसे अगर चन्दा इकट्ठा करने के लिए साँग किया जा रहा है, तो धर्मिक कथाएँ विषय होती हैं। अगर शादी-विवाह में साँग किया जा रहा है तो प्रेम कथाएँ ही अधिकतर विषय होती हैं। साँग का सारा लेना-देना बेड़ेबन्द पर ही टिका होता है। वह साँग को बाँधकर रखता है। उसके बाद बड़ा रकाना और नकलची आते हैं। जो महिला पात्र की भूमिका पुरुष कलाकार निभाते हैं उन्हें बड़ा-रकाना बोलते हैं। सबसे पहले वह साँग में दुर्गा माता और अपने गुरु की वन्दना करते हैं और फिर साँग शुरू करते हैं। इस तरीके से अपने गुरु को सम्मान दिया जाता है और जहाँ तक मँच की बात है वैसे मँच साधारण ही होता है और ऐसा माना जाता है कि पण्डित दीप चन्द सही तरीके से रोहतक साँग स्कूल के जन्मदाता माने जाते हैं, उन्होंने मँच में काफी बदलाव किया। पहले सिर्फ मँच पर एक कलाकार जाकर प्रफ्रोम करता था बाकी नीचे बैठे होते थे। फिर उन्होंने 4 से 8 तख्त का मँच बनाया और गुरु के बैठने के लिए अलग से एक कुर्सी या मुड्ढा रखा। दीप चन्द के समय में ही जो पुरुष कलाकार थे उन्होंने महिलाओं के कपड़े पहनने शुरू कर दिए क्योंकि साँग में हमेशा ही पुरुष कलाकार ही महिला पात्र की भूमिका निभाते आए हैं। आज कल तो हालात बिल्कुल ही बदल गए हैं। साँग तो विलुप्त होने की कगार पर है। जब से यूथ फेस्टिवल में साँग को लेकर आए हैं तब से थोड़ी-सी जागरूकता आई है। आज-कल कुछ कॉलेजों में लड़कियाँ भी साँग में भाग ले रही हैं। पर वो इतने निर्भयता के साथ भूमिका अदा नहीं कर पाती हैं, उनमें झिझक होती है। उनके हाव-भाव और डाँस में वो आकर्षण भी नहीं होता।

सीमा रानीः साँग में भी विविधता होती है क्या?

राजबीरः हरियाणा के कल्चर में विभिन्नता है तो साँग में भी जगह के हिसाब से थोड़े बहुत बदलाव हैं। वैसे हरियाणा में साँग अठारवीं शताब्दी से शुरू हुआ माना जाता है। बंसी लाल और किशन लाल भट्ट पहले साँगियों में आते हैं। लख्मी चन्द, बाजे भगत, पण्डित मोज राम, पण्डित माँगे राम, धनपत सिंह, राम किशन ब्यास प्रमुख साँगी हैं। इसमें एक ब्रज साँग स्कूल है जिसमें पूर्वी हरियाणा, पूर्वी मेवात का एरिया आता है। इनमें उत्तर प्रदेश की संस्कृति का प्रभाव देखा गया है। उसके बाद कुरुक्षेत्र साँग स्कूल है जिसमें कुरुक्षेत्र, कैथल, शाहबाद आदि आते हैं। इनमें नकलची नहीं होता था और इनमें फागुन के महीने में ही साँग किए जाते थे। ज्यादातर साँग धर्मिक कथाओं पर आधारित थे। और साँग ब्रह्ममहूर्त में शुरू किए जाते थे और फिर सबसे महत्त्वपूर्ण नाता रोहतक साँग स्कूल, राम ताल खटीक और नेत राम इसके जन्मदाता माने जाते हैं।

नेत राम के बारे में एक कहानी प्रसिद्ध है। नेत राम एक प्रमुख कथावाचक थे। एक बार वो कथा कर रहे थे। तभी रेवाड़ी के किशन लाल साँगी ने उसी समय अपना साँग शुरू कर दिया। और फिर बहुत सारे दर्शक वहाँ से उठकर साँग देखने चले गए। इससे नेत राम को बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने साँगी के रूप में काम करना शुरू कर दिया। रोहतक स्कूल के साँगी पंजाब उत्तर प्रदेश और रोहतक, राजस्थान में साँग प्ले करते थे। नकलची का रोल प्रमुख होता था। इसमें प्यार और मोहब्बत वाले विषय होते थे। ये पूरा साल ही साँग करते थे और इसमें साँग पूरी रात चलते थे। पण्डित दीप चन्द इस स्कूल के प्रमुख साँगी रहे हैं। उनके बाद रूप चन्द्र साँगी हुए हैं। बाजे भगत भी दीप चन्द अखाड़े से ताल्लुक रखते थे। लखमी चन्द का अखाड़ा भी रोहतक स्कूल में ही आता है। पण्डित माँगे राम लखमी चंद के शिष्य थे। पण्डित माँगे राम के बारे में एक कहानी प्रसिद्ध है कि जब उनके घरवालों को पता चला कि वे साँग में बड़े रकाने का रोल निभा रहे हैं तो उनके पिता जी बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने लठैत भेज दिए उनको लाने के लिए और पण्डित जी ने उन्हें दूर से आते हुए देख लिया था। और वे फिर छुप गए। फिर उन्होंने बड़ी मुश्किल से घरवालों को मनाया। माँगे राम ने तीन-

चार डान्सर मँच पर लाने शुरू कर दिए और जो महिलाओं का पहनावा था उसमें भी बदलाव किया। पण्डित जी के समय सलवार और जम्फर मँच पर पहने जाने लगे। उसके बाद जमुआ मीर का अखाड़ा भी प्रसिद्ध है। वे कौम से मरासी थे। उसके बाद धनपत सिंह, पण्डित राम किशन और चन्द्र बेदी भी काफी प्रसिद्ध साँगी है।

सीमा रानीः साँग में हरियाणा की पुरुष प्रधान संस्कृति ही दिखाई गई है। इसके बारे में आपके क्या विचार हैं?

राजबीरः साँग में कहानियाँ पौराणिक होती हैं। उनमें रागिनी और संवाद जोड़े जाते हैं। फिर साँग भी उसी समय के समाज के हिसाब से चीजें दर्शाएगा। फिर भी मेरा मानना है कि साँग में औरतों को आदरपूर्वक ढंग से ही दिखाया गया है जैसे आप राजा उतानपात के साँग को ही ले लीजिए। इसमें दो रानियां हैं और बड़ी रानी को बड़े अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया गया है। वे बहुत ही पतिव्रता नारी है जो अपने पति और परिवार के लिए अपने पति की दूसरी शादी करवाती है। और दूसरी ओर छोटी रानी है जो अपने माता पिता के कहे अनुसार शादी करने में भी बड़ी मुश्किल से राजी होती है और फिर राजा और बड़ी रानी के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं करती। फिर ऐसे में अच्छे और बुरे दोनों ही किरदार दिखाए गए हैं।

सीमा रानीः आपने कहा कि हरियाणा के कल्चर से आपको काफी लगाव है आपको नहीं लगता कि आप जैसी सोच वाले लोग काफी कम हैं?

राजबीरः भारत एक विकासशील देश है। अभी तक हमारा ध्यान जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में लगा हुआ है। हमारे मन में यह धरणा है कि अगर हम पश्चिमी संस्कृति का अनुसरण करेंगे तो ही हम तरक्की कर पाएंगे। अच्छी बातों को सीखने में कोई बुराई नहीं है लेकिन अपनी सभ्यता और संस्कृति को हमें नहीं भूलना चाहिए। हमारी संस्कृति ने समय-समय पर अपने आप में बदलाव किए हैं और विभिन्नता को अपनाया है। क्लोनीलिज़म के बाद हमारा दृष्टिकोण अपनी संस्कृति को लेकर बदल गया है। हमें अपनी संस्कृति में से बुरी बातों को निकालना चाहिए और अपनी सभ्यता को हमेशा याद रखना चाहिए।

सीमा रानीः लोक नाटक कैसे कल्चर को दर्शाता है?

राजबीरः लोक हमें अपने अतीत से जोड़े रखता है। यह अभी वर्तमान में है और हमें भविष्य के लिए विजन देता है। लोक नाटक, लोग गीत, लोक रागिनी में सभ्यता की झलक होती है। यह उस क्षेत्र के कल्चर को जिन्दा रखते हैं। इनसे हमारी पहचान जुड़ी हुई है। लोक साहित्य उस क्षेत्र के जीने के तरीके को दर्शाता है। यह उनके जीवन सम्बन्धों धार्मिक मान्यताओं और नैतिक मूल्यों को दर्शाता है। यह हमारा मार्गदर्शन करता है। जैसे राजा हरिश्चन्द्र का साँग है उसमें हमें अपने कर्त्तव्यपालन के बारे में बताया गया है। चाहे परिस्थितियाँ विषम हों। लोक नाटक जैसे साँग इनका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक शिक्षा देना भी था। समाज का सदस्य होने के नाते हम अपनी संस्कृति से ही अपने जीने का तरीका ढूँढते हैं। यह न केवल आने वाले पीढ़ियों का मार्गदर्शन करता है बल्कि नियमों का पालन न करने पर समाज के द्वारा तिरस्कृत अपमानित होने के डर को भी दर्शाता है। उदाहरण के तौर पर लोक कथाओं में ऐसी विषम परिस्थितियाँ दिखाई जाती हैं जहाँ नायक अपने खुद के स्वार्थ न देखकर समाज के भले के लिए काम करता है।

डायरेक्टर सुरेन्द्र सिंह से साक्षात्कार

(सुरेंद्र सिंह हिसार जिले के बैरी गाँव से ताल्लुक रखते हैं उनका बचपन से ही रागिनियों और साँग से बड़ा लगाव रहा है। अभी ये दयानन्द महाविद्यालय, हिसार में क्लर्क पद पर कार्यरत हैं। ये साँग लिखते हैं और डायरेक्ट भी करते हैं। जब से कॉलेज में साँग करवाए जाने लगे तब से वो साँग के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। ये साँग को हरियाणा की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण भाग मानते हैं।)

सीमा रानी: साँग में कविता, रागिनी, अभिनय सभी कुछ मिला हुआ है इसके बारे में आप कुछ बताइए?

सुरेंद्र सिंहः साँग को कलाओं का संगम माना जाता है। जहाँ तीन नदियाँ मिलती हैं उसे त्रिवेणी कहते हैं। वैसे ही साँग में सत्यं शिवं सुन्दरं तीनों तत्त्वों का मेल है। इसमें डाँस होता है। नकलची लोगों का मनोरंजन करता है और बेड़ेबन्द नैतिक मूल्यों के बारे में शिक्षा देता है। इसमें दिखाया जाता है कि बुरे समय में इन्सान को हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। इसमें संगीत, रागिनी ज्यादा होता है। इसलिए इसे फोक ओबरा भी कहा जाता है। साँग में अधिकतर कहानियां महाभारत से ली गई हैं। कुछ वीर कथाएँ हैं और कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। प्रेम कथाएँ भी काफी प्रसिद्ध हैं, जैसे लैला मजनू, हीर-रान्झा आदि। साँग में कहानी को बताना उतना महत्त्व नहीं रखता जितना भावों को दर्शाना, जैसे हीर रान्झे का साँग है। अगर इसमें प्रेम की भावना को दर्शाया गया है तो उसे अध्यात्मिकता से भी जोड़ा गया है। और जैसे राजा हरिश्चन्द्र का साँग है इसकी कहानी तो सबको पता है पर साँग में उनकी मनोदशा दिखाई जाती हैं कि कैसे वो अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए अपने मन के भावों को काबू में करते हैं। साँग में कहानियों में थोड़ा सा बदलाव कर दिया जाता

है। क्योंकि भावनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना ज्यादा जरूरी माना जाता है। कुश्ती, दंगल और साँग हरियाणा की संस्कृति के रंग दिखाते हैं। साँग में मुख्य घटनाएं गाकर ही प्रस्तुत की जाती हैं। इसमें दोहा, काफिया, चौबोल, बहरेतबील और रागिनी सब होते हैं। दोहा दो पंक्तियाँ का होता है, काफीया तीन पंक्तियों का होता है, सवैया चार पंक्तियों का होता है और चौबोला भी चार पंक्तियों का होता है। साँग में सबसे लोकप्रिय रागिनी है। रागिनी की कोई शब्द सीमा नहीं होती। रागिनी में पहले टेक फिर कली और तोड़ आते हैं। टेक एक या दो पंक्तियों का होता है फिर उसमें कलियाँ आती हैं जिनको अन्तरा कहते हैं उसके बाद फिर तोड़ आता है जो टेक में मिलता है। अन्तरा अधिकतर चार पंक्तियों का होता है। तोड़ और टेक की जुगलबन्दी मिलती है।

''अनसुनमान ध्यान ते सुनाये, तन रही जो कह,
दखि तु इब सयाना होग्या, दूर होया म्हारा भय
समय देखकर सोया करिये, समय देखकर खाना,
समय के ऊपर ताड़ दीजिए जो सर पर बोझ पुराना,
समय के ऊपर ध्यान लगाना समय देखकर नहाना,
सदा सदुपयोग जै ना करा समय का, हो जाएगा पछताना।

इसमें अन्तरा चार पंक्ति का चल रहा है फिर तोड़ आएगा और चार पंक्तियों में खाना, नहाणा, पछताना, पाँचवी पंक्ति में फिर इसका तोड़ आएगा।

पल-पल में जा बदल समय ना सदा एक सा रह,
इब तू सयाणा होग्या, दूर हुआ मेरा भय

जो रागिनी में आखिर की पंक्तियाँ होती है उसमें लेखक अपना और गुरु जी का नाम देता है जिसे छाप कहते है कि इसने अपनी छाप दे दी।

डाँस बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। यह साँग को प्रभावशाली और रुचिकर बनाता है। साँग का डाँस अलग तरीके का होता है। सभी बेड़ाबन्द साँगियों के पास अच्छे डाँसर होते थे।

बेड़ाबन्द पहले कहानी के बारे में बताता है। फिर दर्शकों को परस्थिति समझाता है। साँग में बेड़ाबन्द ही कहानी का वर्णन करता है। साँग की कहानी बेड़ाबन्द के वर्णन करने और संवाद से चलती है इसे वार्ता और संवाद कहते हैं। वार्ता साँग की एक घटना को दूसरी घटना से जोड़े रखती हैं। कलाकार रागिनी के द्वारा भी अपनी बात रखते हैं। और दूसरे कलाकार रागिनी के द्वारा उसको जवाब भी देता है। इस प्रकार वार्ता और रागिनी दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं।

सीमा रानीः आप महिला पात्र की भूमिका निभाने के लिए, कलाकार लेते समय किन बातों का ध्यान रखते हैं?

सुरेंद्र सिंहः साँग में हमेशा से ही बड़ा रकाने का रोल पुरुष कलाकार ही करता है। बड़ा रकाने के लिए कलाकार मिलना बहुत मुश्किल होता है बेड़ेबन्द के बाद बड़ा रकाना सबसे महत्त्वपूर्ण किरदार है उसे डाँस भी आना चाहिए, उसे रागिनी भी अच्छे से याद होनी चाहिए, और वह सुरीला भी हो और सुर-ताल पर अच्छी पकड़ भी हो, अगर देखने में साफ रंग है तो सोने पर सुहागा है। नहीं तो अच्छा डाँसर है और अच्छा गाता है तो ठीक है।

सीमा रानीः बड़े रकाने के रोल के लिए कलाकार मिलने मुश्किल क्यों है?

सुरेंद्र सिंहः साँग में बेड़ेबन्द का रोल वो है जो समाज को शिक्षा दे सके। बड़ा रकाना, और डाँसर मनोरंजन के लिए होते हैं। नकलची साँग को रोचक बनाता है। बड़े रकाने का रोल काफी महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिए ऐसा कलाकार ढूँढना जो प्रफोरम भी करे और गा भी सके मुश्किल होता है। फिर कौन-सा लड़का लड़की की ड्रेस पहन कर डाँस करना पसन्द करेगा। ऐसा तो दो ही परिस्थितियों में लोग करते हैं, एक तो जिनके पास कला हो और उनके पास गुजारा करने का कोई दूसरा साधन ना हो। दूसरे जिनका जुनून इतना हो कि दुनिया की परवाह न करे। जो डांसर होते हैं, उनका बेड़े में दर्शक मजाक बना लेते हैं क्योंकि ये मनोरंजन के लिए ही होते हैं।

सीमा रानीः बड़ा रकाने के लिए दर्शकों की प्रतिक्रिया कैसी होती है?

सुरेंद्र सिंहः यह तो जगह जगह पर निर्भर करता है जिन लोगों को साँग की समझ होती है। और जिनको थियेटर के बारे में पता होता है। वे प्रफोर्मेंस देखते हैं कि रोल कैसे प्ले किया गया है और उनके लिए सब सामान्य है। जिनको साँग के बारे में पता नहीं होता वो तो इसे कॉमेडी के रूप में ही लेते हैं। उनके लिए तो सब कुछ ही मजाक है। लड़का लड़की की ड्रेस पहन कर स्टेज पर प्ले कर रहा है। वहीं से कॉमेडी शुरू हो जाती है। कपिल शर्मा के शो में भी तो यही हो रहा है। उसमें भी मेल-फिमेल का रोल प्ले करते हैं और लोगों को कॉमेडी लगता है।

सीमा रानीः जो फिमेल रोल प्ले करते हैं उनका डाँस कॉमिक होता है। जबकि बेड़ेबन्द के डाँस में डिगनिटी होती है ऐसा क्यों?

सुरेंद्र सिंहः साँग का अपना अलग ही डाँस होता है और डाँसर मनोरंजन के लिए ही होते हैं। फिर साँग में जिसका रोल जैसा है उसको वैसे ही दर्शाया जाता है। बेड़ेबन्द का रोल हमेशा ही महत्त्वपूर्ण होता है। फिर उसको कॉमिक कैसे बना सकते हैं। बड़े रकाने का रोल भी महत्त्वपूर्ण होता है। पर उसको

उतना सीरियस नहीं लिया जाता। क्योंकि कहानी में उनका रोल बड़े रकाने का रोल उतना सीरियस नहीं होता क्योंकि साँग में हमेशा जनता की पसन्द को देखा जाता है। इस हिसाब से जैसा रोल जनता देखना पसन्द करती है, वैसा ही होता है।

सीमा रानीः क्या औरतें कभी साँग में भाग नहीं लेती थी?

सुरेंद्र सिंहः ऐसा माना जाता है कि बहुत पहले वेश्याएँ साँग जैसा कुछ परफोर्म करती थीं। पर साँग में हमेशा से ही आदमी ही औरत का रोल प्ले करते हैं। हमारी संस्कृति में औरतों को पर्दे में रखा जाता था। औरतें तो साँग भी बहुत दूर से देखती थीं। उन्हें पास बैठकर साँग देखने की अनुमति नहीं थी। फिर भाग लेना तो बहुत दूर की बात हो गई। जहाँ पर बड़े बूढ़े हो तो वहाँ पर औरतों का स्टेज पर आकर नाचना, गाना, कहाँ ही अच्छा माना जाना था। एक बार धनपत राय साँगी ने 1989 में अपने साँग के लिए दो महिला कलाकार रखे थे पर उनकी सुरक्षा के लिए बहुत कड़े बन्दोबस्त किए जाते थे। जहाँ भी साँग होता था वहाँ का सरपँच पहले सुरक्षा की जिम्मेदारी लेता था और पुलिस का इन्तजाम भी कई बार होता था। उन औरतों की कोई मजबूरी रही होगी जो उन्हें स्टेज पर आना पड़ा। आज कल तो वक्त बदल रहा है। कॉलेज में लड़कियाँ भी भाग लेती हैं पर उतना प्रोत्साहन नहीं किया जाता है।

बड़े रकाने का रोल प्ले करने वाले कलाकार मुकेश मलिक से साक्षात्कार

(मुकेश मलिक शामली, उत्तर प्रदेश से ताल्लुक रखते हैं। ये 12 वर्षों से साँग से जुड़े हुए हैं। ये प्रोफेशलन साँगी हैं और इनके पिता जी भी साँग से जुड़े हुए थे। साँग की घटती हुई लोकप्रियता से इनका जीवन बहुत प्रभावित हुआ है और ये सरकार के द्वारा उठाये कदमों से भी संतुष्ट नहीं हैं। उनको अपनी आजीविका साँग से चलाने में बहुत परेशानी आ रही है।)

सीमा रानीः आप साँग में कौन सा किरदार का रोल करते हैं?

मुकेश मलिक : मैं साँग में बड़ा रकाने का रोल प्ले करता हूँ और मेरा बड़ा भाई बेड़ेबन्द का रोल प्ले करता है। मेरे दादा परदादा इसी धंधे में थे। हम मरासी काफी समय से इस धंधे से जुड़े हुए हैं।

सीमा रानीः आपके परिवार की कैसी प्रतिक्रिया रहती है?

मुकेश मलिक : मैं शादीशुदा हूँ मेरी दो बेटियाँ और एक बेटा है। घर पर इन सबको सामान्य ही लिया जाता है। यह कोई नई बात नहीं है हमारे लिए। हम हमेशा से यही धंधा करते आ रहे हैं। मेरे पिता जी भी बड़े रकाने का रोल प्ले किया करते थे। तो हमारे लिए सब साधरण है पर मैं नहीं चाहूँगा कि मेरा बेटा भी इसी धंधे में जाए। क्योंकि इसमें इतना सम्मान भी नहीं मिलता और आजकल तो गुजारा करना भी काफी मुश्किल है। हमने कई बार टैगौर थियेटर में भी प्ले किया है। लेकिन पेमेन्ट सम्बन्धी मुश्किलें बहुत आती हैं। वक्त पर पैसे नहीं मिलते और आजकल तो कोई साँग नहीं करवाता तो फिर ऐसे में मैं नहीं चाहूँगा कि हम आगे इसको करें। जहाँ तक बड़ा रकाने के रोल निभाने की बात है, वो तब तक ही होता है जब तक हम स्टेज में फिमेल के कपड़ों में प्ले करते हैं। जैसे ही स्टेज से उतर कर कपड़े बदलते हैं फिर हम वैसे ही हो जाते हैं। तो ये सब नोर्मल फिर वही साधारण जिन्दगी होती है।

सीमा रानीः क्या आपके व्यवहार में महिलाओं को लेकर कोई बदलाव आया?

मुकेश मलिक : मैं रोल को रोल समझ कर ही करता हूँ तो उतना कोई फर्क नहीं पड़ता। पर एक बार हरिश्चन्द्र के साँग में बड़ा रकाने का रोल प्ले करते समय मैं काफी भावुक हो गया था नहीं तो सब साधरण ही होता है। मेरा व्यवहार तो वैसे ही औरतों को लेकर आदरपूर्वक रहता है।

सीमा रानीः आपको रोल प्ले करने में कोई समस्या नहीं आई?

मुकेश मलिक : पहले पहले तो बहुत शर्म आती थी। मुझे यह रोल प्ले करना अच्छा नहीं लगता था। मैंने नकलची का रोल भी प्ले किया है। लेकिन वो ज्यादा ठीक नहीं रहा मेरे लिए अब गुजारा करने के लिए कुछ तो करना ही पड़ता है।

सीमा रानीः आपको इस रोल के लिए कैसे तैयार किया जाता है?

मुकेश मलिक : मेरे गुरु जी ने हमें सिखाया था। उन्होंने ही मुझे गाना नाचना और अभिनय करना सिखाया था। पहले हमें डायलॉग और रागिनी में पकड़ बनानी होती है। जब एक बार इन पर पकड़ बन जाती है फिर हमें हाव-भाव सिखाए जाते हैं। हमारे गुरु जी रिहर्सल के समय खुद हमारे साथ फिमेल के कपड़ों में आते थे ताकि हमें अच्छा महसूस हो। पहले हम हाव-भाव, डायलॉग और रागिनी पर पकड़ बनाते हैं और फिमेल के कपड़ों में परफोर्म करते हैं। फिर ऐसे स्टेज पर मुश्किल नहीं आती है और वैसे भी अगर थोड़ी ऊँच-नीच हो तो चल जाता है, क्योंकि

बेड़ेबन्द सब सम्भाल लेता है।

सीमा रानीः दर्शकों की कैसी प्रतिक्रिया रहती है।

मुकेश मलिक : हरियाणा में तो फिर भी ठीक है। हरियाणा से बाहर उतना अच्छा नहीं होता। हमें हिजड़े माना जाता है। कई बार काफी बुरा व्यवहार भी होता है। पर अब उसकी आदत हो गई है। जब कोई छेड़ता है तो हम उसको वापिस वैसी ही भाषा में जवाब देते हैं। पता नहीं ऐसा क्यों होता है। जब उनको पता है हमारे जैसा ही आदमी है पर जनानी के कपड़े पहनने के बाद उनके देखने का नजरिया बदल जाता है।

कॉलेज फन्कशन में फिमेल का रोल प्ले करने वाले कलाकार कमल कुमार से साक्षात्कार

(सरकारी महाविद्यालय, करनाल में बी.ए. तृतीय वर्ष के विद्यार्थी हैं। इन्हें बचपन से ही हरियाणवी संस्कृति व साँग से बहुत लगाव रहा है। यह रागिनी भी गाते है। इन्होंने कॉलेज में रागिनी प्रतियोगता व साँग में भाग लिया है यद्यपि इन्हें साँग से बड़ा लगाव है पर ये साँग में कॉलेज के बाद भाग नहीं लेना चाहते। साँग की घटती हुई लोकप्रियता तथा आजीविका का साधन न होने की वजह से ये साँग से अपना रिश्ता तोड़ रहे हैं। इनका कहना है कि युवा पीढ़ी का साँग की तरफ कोई आकर्षण नहीं है।)

सीमा रानीः आप क्या कर रहे हैं अभी?

कमल कुमारः मैं बी.ए. थर्ड ईयर में हूँ। और कॉलेज में साँग में भी भाग लेता हूँ।

सीमा रानीः आपके दोस्तों की क्या प्रतिक्रिया होती है?

कमल कुमारः वैसे तो इतना कुछ नहीं बदलता। मेरे परिवार में पहले भी साँग करते थे। पर कई बार वैसे ही मजाक बना दिया जाता है। जैसे मैंने साँग में छोटी रानी का रोल प्ले किया था तो मेरे दोस्त कभी-कभी मुझे छोटी रानी बुलाते थे। पर मुझे उतना बुरा नहीं लगता। इतना तो दोस्तों में चलता है।

सीमा रानीः आपको बड़े रकाने का रोल प्ले करने में कैसा लगता है?

कमल कुमारः मुझे ठीक लगता है। जो स्टेज पर राजा का रोल प्ले करता है। वह कौन-सा सच में राजा होता है। मैंने बेड़ेबन्द और बड़े रकाने दोनों का रोल प्ले किया है। जब बेड़ेबन्द का रोल प्ले करते हैं तो पूरे साँग की जिम्मेवारी आ जाती है। इसमें सब बातों का ध्यान रखना पड़ता है। सबकी नजरें उसी पर टिकी रहती है। पर बड़े रकाने के रोल में उतना दबाव नहीं होता।

सीमा रानीः आप दर्शकों की प्रतिक्रिया को कैसे लेते हो?

कमल कुमारः वैसे मैं उतनी परवाह नहीं करता। मैं रोल को रोल समझ के करता हूँ और अपने रोल को अच्छे करने की कोशिश करता हूँ। अगर छोटी-मोटी कोई बात हो तो उसको मैं लेकर परेशान नहीं होता। अगर हम उनके रिस्पोंस को दिल पे ले लेंगे तो बिना झिझक के रोल प्ले करना काफी मुश्किल हो जाएगा। एक कलाकार के लिए इन सब बातों पर ध्यान न देना अच्छा होता है।

सीमा रानीः हरियाणा की सभ्यता और संस्कृति के बारे में आप कुछ बताना चाहेंगे?

कमल कुमारः हरियाणा के लोग सादगी के लिए जाने जाते हैं। इनका खान-पान वेश-भूषा, नृत्य नाटक सब सादा होता है। यहाँ के लोग धार्मिक हैं। आपसी भाईचारे, बड़े-बूढ़ों का मान-सम्मान, बोल चाल में सादगी, हाजिर जवाबी, लोक व्यवहार के नियमों का पालन करना। यहाँ के जीवन के आदर्श माने जाते हैं। स्पष्टवादिता यहाँ के लोगों का विशेष गुण है। इस प्रदेश में खंड़का, कुर्ता, धोती, हाथ में लाठी, वृद्ध व्यक्ति का पहनावा होता है। स्त्रियां, ओढ़नी, चूँदड़ी, घाघरी, दामन, कुर्ता पहनती थीं। यहां सावन, फागन, शिवरात्रि ग्रहण मेले, तीर्थ स्नान, कार्तिक स्नान, तीज त्योहार, गुगानवमी, एकादशी, पशु मेले और मन्दिर हरियाणा की संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। यहाँ की स्त्रियाँ पैरों में कड़ी, नेवरी, ताती-पाती, पायल, पजेब, पती-ताबीज, चन्दनहार, मटर माला, मोहन माला, ढोल कंठी, गलसरी तथा हाथों के कड़ले, कंगन, पौंची, घड़ी, कानों में बनजी, बाली, झुमकी, बुन्द, कन्फूल और कुण्डल, कमर पर तागड़ी और पावों की उँगली में चुटकी आदि पहनती हैं। माथे का टिक्का और सिंगार पट्टी यहां के प्रमुख आभूषण हैं। पुरुष कानों में टोपस पहनते थे और हाथों में कड़ा पहनते थे और उंगलियों में विभिन्न प्रकार की अँगूठियां पहनते थे। घी, दूध, दही, मक्खन, लस्सी यहाँ के लोगों का पसंदीदा खाना है। गेहूँ और मक्की की रोटी, बाजरे की रोटी, खिचड़ी, राबड़ी, दलिया, सरसों का साग, बथवे का रायता, चूरमा, पूड़ा, हलवा, खीर यहाँ के लोगों का प्रिय भोजन है। हरियाणा के संस्कृति के बारे में दो पंक्तियां काफी प्रसिद्ध है।

देसां म्हं देस हरियाणा, दूध दही का खाना,
सादा खाना सादा गाना, सादा ठोर ठिकाणा।

संपर्कः शोधार्थी, अंग्रेजी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

बाल मनोविज्ञान और मानसिक समस्याएं

□ मुलख सिंह

हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ, खण्ड कालांवाली ने तर्कशील सोसायटी पंजाब, इकाई कालांवाली के सहयोग से अध्यापकों व अभिभावकों को, बच्चों व दूसरे आयु वर्गों में तेजी से फैल रहे मानसिक रोगों के प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से 'बाल मनोविज्ञान व मानसिक समस्याएं ' विषय पर राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय कालांवाली में 24 जून, 2018 को सेमिनार आयोजित करवाया। इसमें बठिंडा से मनोचिकित्सक डॉक्टर राजकुमार बांसल मुख्य वक्ता के रूप में उपस्थित हुए। इस कार्यक्रम में अध्यापकों सहित भारी संख्या में आमजनों ने भाग लिया। प्रस्तुत है रिपोर्ट-

संपादक

डा. राजकुमार बांसल ने अपनी बातचीत आरंभ करते हुए कहा कि वे गत बीस-पच्चीस वर्षों से मानसिक रोगों और नशा मुक्ति के विषय पर विशेषज्ञ के तौर पर काम कर रहे हैं। हर बीमारी की तरह मानसिक रोगों के कारण भी शारीरिक या अनुवांशिक होते हैं, आर्थिक और घरेलू होते हैं या नौजवानों और बच्चों में अनेक तरह के दबाव इनका कारण बनते हैं। इस गोष्ठी का महत्व इस रूप में ज्यादा है कि आज भी लोग अध्यापकों को अपने से समझदार मानते हैं और अपने पारिवारिक या स्वास्थ्य संबंधी मामलों में अध्यापकों की सलाह लेते हैं। पर किसी मानसिक परेशानी पैदा होने पर मरीज का वास्ता 'सयानों' जैसे ओझा, तांत्रिक आदि शातिर लोगों से पड़ता है या सामान्य चिकित्सकों से जिन्हें मानसिक रोगों के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं होती।

बच्चों को बहुत छोटी छोटी बातों की परेशानी भी घेर लेती है जबकि बड़े उन्हें समझने की बजाय उन पर बोझ लादते रहते हैं। आजकल हर माँ बाप यही चाहता है कि उसके बच्चे के कक्षा में सबसे ज्यादा अंक आने चाहिएं क्योंकि उन्होंने बच्चों के अंकों को अपनी इज्जत का आधार बना लिया है। बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने में डाक्टर से ज्यादा भूमिका अभिभावकों व अध्यापकों की होती है। बच्चों की मानसिक समस्याएँ परिवार, समाज या स्कूल की देन होती हैं परंतु आमतौर पर अध्यापक ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर बच्चे को स्कूल से लंबी छुट्टी देकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं जो कि बिल्कुल गलत होता है क्योंकि ऐन उसी वक्त तो बच्चे को अध्यापक की सबसे ज्यादा जरूरत होती है।

मानसिक रोग दो तरह के होते हैं। बड़े मानसिक रोग और छोटे मानसिक रोग। पहली श्रेणी के रोगों के इलाज के लिए डॉक्टर और दवाइयों की जरूरत होती है जबकि छोटे मानसिक रोग अध्यापक और अभिभावक या तर्कशील सोसायटी के अनुभवी लोग अपने स्तर पर भी ठीक कर सकते हैं। इसके उपरांत उन्होंने इन सभी रोगों के लक्षण वास्तविक उदाहरण देकर बताए और सही इलाज व अभिभावकों की मनोस्थिति के बारे में बात रखी।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य बच्चे को मानसिक रूप में मजबूत बनाना होता है। पर शिक्षा प्रणाली की विफलता इस रूप से सिद्ध होती है कि ज्यादातर होशियार और संवेदनशील बच्चे ही मानसिक रोगों का शिकार होते हैं क्योंकि अभिभावकों द्वारा उन पर ज्यादा से ज्यादा अंक लेने का दबाव बना रहता है। मानसिक रूप से तंदरुस्त व्यक्ति किसे कहा जाए, के जवाब में उन्होंने कहा कि जिस व्यक्ति का शरीर ठीक हो, कोई दर्द न हो, कोई अदृश्य डर न हो, व्यर्थ की चिंता न हो व वह अपनी पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह ठीक ढंग से करता हो व खुश रहता हो ; उसे मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति कहा जाएगा। व्यक्ति के स्वस्थ रहने के लिए घर और समाज का वातावरण भी अच्छा होना चाहिए। नागरिक, अभिभावक और अध्यापक समाज के वातावरण को सकारात्मक बनाए रखने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं।

बच्चों की आइ क्यू या दिमाग बढ़ाने के लिए दी जाने वाली दवाओं के बारे में कहा कि किसी भी पैथी में ऐसी कोई

दवा नहीं है और यह हमारी इस कमजोरी को भुनाने का हथकंडा ही कंपनियों ने अपना लिया है। शारीरिक सेहत में केवल संतुलित भोजन की ही भूमिका नहीं अपितु बच्चे का मिट्टी में खेलना भी जरूरी होता है। इसी प्रकार सख्त अनुशासन, शांति, चुप रहना मानसिक सेहत के लिए घातक है। इसकी बजाय शोर करना, शरारतें करना और खेलना मानसिक तौर पर स्वस्थ रहने के लिए बहुत आवश्यक है।

स्वस्थ कैसे रहा जाए ?

डाक्टर राजकुमार बांसल ने कहा कि बीस प्रतिशत शारीरिक रोगों का कारण अनुवांशिक और अस्सी प्रतिशत रोगों का कारण हमारा खानपान है। उसी तरह बीस प्रतिशत मानसिक समस्याएँ अनुवंशिक और अस्सी प्रतिशत वे होती हैं जिन्हें हम आँखों और कानों से अंदर ले जाते हैं यानी अगर हम इसके प्रति सचेत रहें कि हमने खाना क्या है और देखना, सुनना और सोचना क्या है तो हम खुद काफी हद तक तंदरुस्त रह सकते हैं।

एक और महत्वपूर्ण बात जो चर्चा में से उभरकर सामने आई कि हम बच्चों को जोड़, घटा, गुणा करने की मशीन यानी कैल्कुलेटर न बनाएँ और न ही उन्हें रट्टा लगाने व आँकड़े याद करने वाला मेमोरी कार्ड बनाएँ। बच्चों को पढ़ने-लिखने, कलात्मक पक्षों का विकास करने व संगीत, गायन, नृत्य के मौके प्रदान करके स्वस्थ और खुशियों भरा जीवन जीने दें।

हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ खंड प्रधान मास्टर अजायब सिंह ने स्वागत व वक्ता परिचय दिया। अध्यापिका नवजोत कौर ने विषय के महत्व पर बात रखी। हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ के राज्य कमेटी सदस्य श्री चिरंजी लाल ने डाक्टर राजकुमार बांसल, उपस्थित अध्यापक अध्यापिकाओं व दूसरे प्रतिभागियों का धन्यवाद किया।

संपर्क - 9416255877

शहीद उधम सिंह के जीवन और संघर्ष विषय पर विचार-गोष्ठी

□ अरुण कैहरबा

देस हरियाणा सृजनशाला की ओर से इन्द्री के राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय में उधम सिंह के शहीदी दिवस के उपलक्ष्य में शहीद उधम सिंह के जीवन और संघर्ष विषय पर विचार-गोष्ठी आयोजित की गई। गोष्ठी में मुख्य वक्ता के रूप में देस हरियाणा के संपादक एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रो. सुभाष चन्द्र ने शहीद उधम सिंह के जीवन के विभिन्न अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डाला। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. ओम प्रकाश करुणेश ने मुख्य अतिथि के रूप में शिरकत की। गोष्ठी का संचालन हिन्दी प्राध्यापक अरुण कैहरबा ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता एवं संयोजन कवि नरेश मीत व दयाल चंद जास्ट ने किया। गोष्ठी में कथा सम्राट प्रेमचंद की जयंती पर उन्हें भी श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

डॉ. सुभाष चन्द्र ने कहा कि साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ आजादी के लिए उधम सिंह ने अपनी शहादत दी। अन्य कई क्रांतिकारियों से अलग उधम सिंह समाज के बिल्कुल निचले तबके के गरीब परिवार से संबंध रखते थे। उन्होंने कहा कि उधम सिंह जब तीन साल के थे तो मां और सात साल की अवस्था में उनके पिता की मौत हो गई। अमृतसर के अनाथाश्रम में उनका पालन-पोषण हुआ। पंजाब में त्याग और बलिदान की परंपराओं, अमृतसर के माहौल व गदर पार्टी सहित क्रांतिकारी जत्थों की सरगर्मियों ने उसे प्रभावित किया। जलियांवाला बाग के हत्याकांड का उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा कि आजादी की लड़ाई में अपना योगदान देने वाले किसी भी क्रांतिकारी को उसके विचारों से काटकर नहीं देखा जा सकता।

ओमप्रकाश करुणेश ने कहा कि आज शिक्षा को साम्प्रदायिक रंग लेकर देश में तेजी से कार्रवाईयां की जा ही हैं। ऐसे में स्वतंत्रता आंदोलन की क्रांतिकारी वैचारिक विरासत को आगे बढ़ाने के लिए मिलकर काम मिलकर काम करना चाहिए। अरुण कैहरबा ने कहा कि शहीदों व क्रांतिकारियों को जातियों में बांट कर हम आगे नहीं बढ़ सकते। गोष्ठी में अपनी टिप्पणी करते हुए उधम सिंह तुसंग ने कहा कि अपने बुजुर्गों से हमने उधम सिंह की कहानी सुनी है। जिसमें पता चला कि उधम सिंह हाथ के काम में कुशल थे। वे बिजली का काम कर लेते थे। अपनी तकनीकी कुशलता के कारण ही वे दूसरे देशों में जा सके। कवि दयाल चन्द ने उधम सिंह को समर्पित अपनी स्वरचित रचना गाकर सुनाई। गोष्ठी में नरेश मीत, दयाल चंद, उधम सिंह, महिन्द्र खेड़ा, जसविंद्र सिंह, रजनेश फाजिलपुर, नरेश सैनी, मान सिंह, ईश्वर सिंह, रीतू, प्रेमपाल चंदेल, निसार, सूरज भान बुटानखेड़ी, कंवर भान, बलवंत, सार्थक ने हिस्सा लिया।

16 साहित्यकार सम्मानित
'नवल प्रयास' राज्य स्तरीय साहित्य उत्सव

डॉ. विनोद प्रकाश गुप्ता संस्थापक अध्यक्ष, नवल प्रयास शिमला

कला, भाषा, संस्कृति एवं समाज सेवा को समर्पित संस्था 'नवल प्रयास' द्वारा 12 मई 2018 को शिमला स्थित दयानंद पब्लिक स्कूल के सभागार में एक दिवसीय राज्य स्तरीय साहित्य उत्सव का सफल आयोजन हुआ जिसमें 16 साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक व नया ज्ञानोदय के संपादक प्रख्यात कवि लीलाधर मंडलोई रहे। उन्होंने कहा कि इतने व्यापक स्तर पर साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन अपने आप में बड़ी बात है। इस तरह के समावेशी आयोजनों की आज बड़ी आवश्यकता है। यह वैचारिक लोकतंत्र के लिए भी महत्वपूर्ण है। संस्था के अध्यक्ष व लेखक डॉ. विनोद प्रकाश गुप्ता ने मुख्य अतिथि सहित सभी उपस्थित रचनाकारों का स्वागत किया और इस आयोजन को सफल बनाने के लिए उनका आभार व्यक्त किया।

इस आयोजन के पहले सत्र का आकर्षण विभिन्न डीएवी स्कूलों से पधारे 25 बच्चों का कविता पाठ एवं कविता कार्यशाला रही जिसकी अध्यक्षता डॉ. प्रेम लता ने की। कार्यशाला का संयोजन चर्चित कवि आत्मा रंजन ने डॉ. कुल राजीव पंत और डॉ. प्रियंका वैद्य की सहभागिता से किया। कविता प्रतियोगिता में स्वास्तिक प्रथम, अक्षत शर्मा को द्वितीय और सना को तृतीय पुरस्कार से नवाजा गया। इसके साथ 2 बच्चों आकृत शर्मा और इषा गौतम को सांत्वना पुरस्कार प्रदान किए गए।

दूसरा सत्र कहानी पाठ का रहा जिसमें श्रीनिवास जोश, गंगाराम राजी, बद्रीसिंह भाटिया और सुरेश शांडिल्य ने कहानी पाठ किया। चारों कहानियों को खूब सराहा गया।

इस उत्सव का मुख्य आकर्षण नवल प्रयास साहित्य सम्मान रहे। पुरस्कार चार श्रेणियों में दिए गए। 'नवल स्मृति आजीवन शिरोमणि सम्मान-2018' श्री निवास जोशी, डॉ. अनिल राकेशी, ओम चंद हांडा और रमेशचन्द्र शर्मा को प्रदान किया गया। प्रकाश साहित्य रत्न सम्मान-2018 से केशव, डॉ. हेम राज कौशिक, डॉ. सुशील कुमार फुल्ल, बद्री सिंह भाटिया, डॉ रेखा वशिष्ठ, के आर भारती, चन्द्र रेखा ढडवाल और आत्मा रंजन को नवाजा गया तथा धर्म प्रकाश साहित्य मणि सम्मान 2018 पवन चौहान और संजय ठाकुर को दिए गए। नवल प्रयास उभरती प्रतिभा सम्मान देव कन्या ठाकुर और दिनेश शर्मा को प्रदान किए गए। प्रत्येक श्रेणी में सम्मानित साहित्यकार को क्रमश 11000/-, 5100/-3100/- और 2100/-रुपए की नकद धन राशि प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह और अंग वस्त्र प्रदान किया गया। प्रत्येक बच्चों को पुरस्कार के रूप में पांच-पांच हजार तक की राशि के उपहार दिए गए। साथ ही प्रत्येक भागीदार बच्चों को भी उपहारों और स्मृति चिन्हों से नवाजा गया। शशि किरण गुप्ता, क्षेत्रीय निदेशक, डीएवी पब्लिक स्कूल, हिमाचल जोन द्वारा प्रत्येक साहित्यकार का प्रशस्ति वाचन प्रस्तुत किया गया।

इस अवसर पर लीलाधर मंडलोई के निर्देशन में तैयार मुक्तिबोध की कविताओं पर आधारित लघु फिल्म आत्मसंभवना भी दिखाई गई।

तीसरा सत्र कविता पाठ का रहा जिसे 10 उप सत्रों में बांटा गया। प्रत्येक सत्र में एक अध्यक्ष और पांच कवियों ने कविता पाठ किए। इनमें प्रदेश भर से तकरीबन 50 कवियों ने अपनी रचनाएं पढ़ीं। कवियों में लीलाधर मंडलोई, विजय स्वर्णकार, कमलेश भारतीय, मनोहर बाथम, श्रीनिवास श्रीकांत, केशव, रेखा, सुदर्शन वशिष्ठ, अनिल राकेश, के आर भारती, आत्मारंजन, चन्द्र रेखा ढडवाल, कुल राजीव पंत, पूनम तिवारी, अशनी गर्ग, दिनेश शर्मा, देवकन्या ठाकुर, अंजलि दीवान, देवरानी, सत्य नारायण स्नेह, संजय ठाकुर, भारतीय कुठियाला, हेमराज चौहान, पवन चौहान, पौमिला ठाकुर, प्रियंवदा, नीता अग्रवाल, रौशन जसवाल, कृष्ण चंद महादेविया, वीरेन्द्र शर्मा वीर, विनोद रोहतकी, नरेश दओग, राजीव त्रिगर्ती, अशोक गौतम, प्रियंका वैद्य, विजय पूरी, शरत, सुमित राज वशिष्ठ, मुनीश तन्हा, उमा ठाकुर, पोरस ठाकुर, कौशल मुगटा आदि ने भाग लिया। सत्र का संचालन डा0 कर्मसिंह ने किया।

इस आयोजन में विशेष भागीदारी और सहयोग हिमालय साहित्य एवं संस्कृति मंच, शशि किरण गुप्ता, क्षेत्रीय निदेशक, डीएवी पब्लिक स्कूल, हिमाचल जोन एवं दयानंद पब्लिक स्कूल प्रबंधन रहा.

मॉब लींचिंग - सामाजिक न्याय का सवाल

डॉ ओम प्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र की सामाजिक न्याय समिति की तरफ से 9 अगस्त 2018 को 'मॉब लींचिंग -भारत छोड़ो' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी की अध्यक्षता संस्थान के अध्यक्ष डॉ टीआर कुंडू ने की और संचालन समिति संयोजक अश्विनी दहिया ने किया। प्रस्तुति - अरुण कैहरबा।

- संपादक

डॉ ओम प्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र के सचिव डॉ. सुभाष चंद्र ने संगोष्ठी का परिचय रखते हुए संस्थान की गतिविधियों और संस्थान की बौद्धिक भूमिका से परिचय करवाया। उन्होंने अपील की कि ये गोष्ठियां बौद्धिक विलास में तब्दील ना हों इसलिए हम सभी को अपने संपर्क के साथियों से चर्चा करनी है।

डॉ. सुभाष चंद्र ने विषय की प्रस्तावना रखते हुए कहा कि भीड़तंत्र लोकतंत्र के लिए खतरा है और यह सामाजिक न्याय का सवाल है परंपरागत तौर पर दलित-दमित-वंचित लोग ही इसका शिकार होते हैं। बड़ी चिंता की बात है कि शासन-सत्ताएं हमारे नागरिकों को भीड़ में तब्दील करने में सहयोगी बन रही हैं। जाति-धर्म की भीड़ की आड़ में छुपकर घोर अपराधी अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। इसके वर्तमान संदर्भों को समझना जरूरी है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग में प्रो. महावीर जागलान ने मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए कहा कि माब लींचिंग आज की नहीं पुराने समय से चली आ रही है, जिसमें भीड़ किसी को डायन और कभी कुछ कह कर पीटती है। महिलाएं, दलित, अल्पसंख्यक सहित समाज के कमजोर तबके इसका शिकार बनाए जाते हैं। पहले भी इस प्रकार की घटनाएं होती थी, लेकिन अब यह अनजाने में नहीं हो रहा। उन्होंने आंकड़े रखते हुए कहा कि 371 में से 228 मामलों में अल्पसंख्यक को पिछले चार सालों में शिकार बनाया गया है। पिछले एक साल में 30 केस हुए हैं 9 राज्यों में। इनमें सबसे ज्यादा उत्तर प्रदेश और राजस्थान के हैं। यह नोर्मल माब लींचिंग नहीं है। इसका एक खास पैटर्न है। गोरक्षा के नाम पर गुंडागर्दी हो रही है। माब लींचिंग 1984 और 2002 में मोब लींचिंग की बड़ी घटनाएं हुई। साम्प्रदायिक सोच धीरे धीरे फैलाई गई है। व्हाट्स अप व सोशल मीडिया को नफरत फैलाने के लिए प्रयोग किया जा रहा है और सरकारें भी इसका बहाना बना रही हैं।

मोब लींचिंग पर कानून का अभाव है। जिग्नेश मेवानी, कन्हैया कुमार आदि ने मिल कर मानव सुरक्षा कानून नाम से नए कानून का ड्राफ्ट तैयार किया है। क्या कानून बनाने से समस्या का समाधान हो जाएगा। मनगढंत नैरेटिव को काटने के लिए और धर्म निरपेक्षता को बचाने के लिए सही परिप्रेक्ष्य में लोगों से बातचीत करनी होगी।

प्रेम सिंह ने कहा कि मनुवादी सोच मोब लींचिंग का आधार है। मनुवाद मनुष्य के भेदभाव को तार्किक आधार देता है।

इंदर सिंगला ने कहा कि मोब लींचिंग पूंजीवाद की सवारी है। समस्या अर्थव्यवस्था है। नोटबंदी विफल हुई तो गाय व गीता आदि के मुद्दे उछालते हैं ताकि असली मुद्दों पर लोगों का ध्यान ना जाए।

रविन्द्र गासो ने कहा कि इंसाफ पसंद जागरूक लोगों को बात करनी चाहिए। मोब लींचिंग के खिलाफ सामाजिक सांस्कृतिक लड़ाई है। हिंदू राष्ट्र नफरत का एजेंडा है। सरस्वती नदी जैसे मिथ बनाए जा रहे हैं। हिंदू राष्ट्र की अवधारणा वर्ण व्यवस्था को लागू करने की साज़िश है।

जिले सिंह सभ्रवाल ने कहा कि बाबा साहेब आंबेडकर ने भारत को संपूर्ण संविधान दिया। आज भारत में संविधान को लागू करने की प्रतिबद्धता से सरकार पीछे हट रही है। यही कारण है कि मोब लींचिंग की घटनाएं बढ़ रही हैं।

विजय विद्यार्थी ने संगोष्ठी में बातचीत करने वालों को कबीर और अंबेडकर की विरासत को आगे बढ़ाने वाला बताया। ओम सिंह अश्फाक ने दुलीना कांड को याद करते हुए कहा कि यह मोबचिंग की ही घटना थी। मोब लींचिंग का इलाज अंबेडकरवाद में है। अंबेडकर ने शिक्षा, संगठन और संघर्ष को मोब लींचिंग खत्म करने का महामंत्र बताया। समय समय पर शांति मार्च निकालकर हम इस प्रकार की घटनाओं का जवाब दे सकते हैं।

एसपी सिंह ने कहा कि मोब लींचिंग के विविध आयाम हैं।

अलग अलग स्थानों पर इसके अलग अलग डिजाइन हैं। समाज के कमजोर तबकों को इसका शिकार बनाया जाता है। मजबूत लोग मोब लींचिंग करते हैं। वैचारिक रूप से कमजोर लोग इसका समर्थन कर सकते हैं। यह फासीवाद का ही एक रुप है। भीड़ तंत्र मजबूत होगा तो लोकतंत्र कमजोर होगा। सबसे बड़ा सवाल है कि हम क्या करें। हमें ऐसा मिकैनिज्म विकसित करना चाहिए कि साम्प्रदायिक विचार पैदा ना हो।

हरपाल गाफिल ने कहा कि स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत से सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण हो सकता है। नाज़ुक मसलों को मशीनी ढंग से हल नहीं हो सकता।

शब्बीर लियाकत अली ने बताया कि पांचवीं बार हिंसा का शिकार हुआ। 15 लोगों ने पीटा। दाढ़ी खींची। मुस्लिम को शिकार बनाया जा रहा है। लियाकत अली ने कहा कोर्ट में चक्कर काटने पड़े। झांसा चौंकी के पास अन्य साथी पर हमला हुआ। कुछ लोग तमाशा देखते रह जाते हैं।

रजविन्दर चंदी ने अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को सहयोग का आश्वासन दिया। रानी ने कहा कि मोब लींचिंग एक अपराध है। गाय एक बहाना है। इसकी आड़

कर्मबीर ने कहा कि आस्था को ढाल के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि सामाजिक परिवर्तन के बिना राजनैतिक परिवर्तन नहीं हो पाएगा।

अध्यक्षीय टिप्पणी रखते हुए टीआर कुंडू ने कहा कि हमें प्रोएक्टिव होने की जरूरत है। भारत का संविधान एक सामाजिक दस्तावेज है। जो इसे लागू ना कर सके, उसकी विफलता उजागर की जानी चाहिए। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व संविधान के आधार भूत सिद्धांत हैं। बहुलता, धर्मनिरपेक्षता और कानून का शासन की बात की गई। कानून और व्यवस्था बनाए रखना सरकार का दायित्व है। जो यह काम ना कर सके, उसे सत्ता में रहने का अधिकार नहीं है।

सम्पर्क: 94662-20145

युद्ध नहीं बुद्ध चाहिए
भारत पाक अमन दोस्ती यात्रा

13 अगस्त, 2018 को दिल्ली से वाघा बार्डर तक चल रही अमन दोस्ती यात्रा का पीपली (कुरुक्षेत्र) स्थित पैराकीट में देस हरियाणा द्वारा जोरदार स्वागत किया गया। स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में भारत-पाक दोस्ती के लिए आयोजित की जा रही यात्रा में 40 सामाजिक कार्यकर्ता हिस्सा ले रहे हैं। 12 अगस्त से शुरू हुई यह यात्रा वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर, डॉ. मोहिनी गिरी, योजना आयोग की पूर्व सदस्या डॉ. सईदा हमीद, रमेश चन्द्र शर्मा, वीणा बहन, वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी जयवंती श्योकंद व राममोहन राय के नेतृत्व में 14अगस्त की शाम को वाघा बार्डर पहुंचेगी और मोमबत्तियां जलाकर अपने सांझा क्रांतिवीरों को श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे। पीपली के पैराकीट में अमन-दोस्ती यात्रा का स्वागत करते हुए देस हरियाणा के संपादक डॉ. सुभाष चन्द्र ने कहा कि यात्रा दोनों देशों के अमनपसंद लोगों की भावनाओं को आगे पहुंचा रही है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि नफरत की बजाय यह यात्रा लोगों को भाईचारे और अमन का संदेश देगी। सत्ताधारी लोग धर्म व जाति के नाम पर लोगों को बांटने की साजिशें करते हैं, लेकिन जनता की भावनाएं भाईचारे व एकता से रहने की हैं। उन्होंने आशा जताई कि दोनों देशों की जनता की तरफ से अमन की कोशिशें तेज होंगी और साम्राज्यवादी व सत्तापिपासु शक्तियों द्वारा निर्मित कृत्रिम सरहद अवश्य मिटेगी। उन्होंने कहा कि यह यात्रा बाबा फरीद, कलदंर, बुल्लेशाह, गुरू नानक देव, कबीर, रैदास की सांझी विरासत व परंपराओं को स्थापित करेगी।

यात्रा संयोजक रवि नितेश ने फैज अहमद फैज की नज्म सुनाते हुए कहा कि स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिवीरों व स्वतंत्रता सेनानियों ने जिस आजादी का सपना देखा था, स्वतंत्रता के 72 सालों बाद भी वह सपना पूरा नहीं हुआ है। देश का विभाजन और दोनों देशों की सरकारों द्वारा साम्प्रदायिक आधार पर लोगों को बांटना देशभक्तों की आजादी की परिकल्पना के प्रतिकूल है। शांति, साम्प्रदायिक सदभाव और भाईचारे के बिना वह सपना पूरा नहीं होगा। कार्यक्रम के दौरान यात्रा में शामिल प्रवेश त्यागी के साथ ओमप्रकाश करुणेश, हरपाल गाफिल, राजीव सान्याल, वीरेन्द्र, अरुण कैहरबा, विकास साल्याण, रेमन, कृष्ण, रोहित, राहुल, सुनील थुआ, देवदत्त, बलदेव सिंह महरोक, विपुला, गुंजन कैहरबा, महिन्द्र खेडा, उधम सिंह, मान सिंह, देवेन्द्र सिंह, सबरेज अहमद, जसविन्द्र, नरेश दहिया, प्रदीप स्वामी सहित अनेक गणमान्य नागरिकों एवं रचनाकारों ने भाईचारे के गीत गाए और गोली नहीं बोली चाहिए, जंग नहीं अमन चाहिए, युद्ध नहीं बुद्ध चाहिए के नारों से अपनी भावनाएं व्यक्त की।

सम्पर्क: 94662-20145

रवींद्रनाथ टैगोर की कविताएं

□ सुभाष चंद्र

कल्ला चाल

जे तेरा रुक्का सुणकै, कोए भी ना आवै
फेर तूं कल्लाए चाल
कल्ला चाल, कल्ला चाल, कल्ला चाल तूं।
जे कोए बी ना बोलै, ओ अभागे,
ओ अभागे सबके मुंह में दही जम जै
सारे मुंह मोड़ लें, सारे डररे हों
फेर भी तूं निडर हो कै
कल्लाए आपणी बात बोल।
जे सारे उल्टे मुड़ लें, ओ अभागे,
ओ अभागे सारे पुट्ठे मुड़ लें
जंगळ की काळी घुप्प अंधेरी रात में कोई भी ना जावै
तो पैरां की लहुलुहाण तळियां तै
रस्ते के कांडे दरड़दा
कल्ला चाल
जे दीवा ना बळै, ओ अभागे
तूफानी रात में जे सारे किवाड़ भैड़ लें
तो बिजळी की आग तै
आपणी हिरदा की पीड़ जळा
कल्ला बळ

(मूल बांगला में एकला चलो रे)

बेखौफ सोच

जडै सोच हो बेखौफ, स्वाभिमान हो जड़ै,
जडैं ज्ञान हो आजाद, घर-आंगण में संकीर्ण भीत ना खड़ै
जड़ै ना बंडै धरती हररोज छोट-छोटे टुकड़्यां टुकड़्यां म्हं
जड़ै हिरदा की तळी तै लिकडैं, साच्चे साच्चे बोल
चार-चफेरै फूटैं सोत्ते करमां की नदी के
बेरोकटोक बहै विचारां का दरिया
जड़ै टुच्चे-स्वार्थी बुहार का बाळू रेत
विचारां के दरिया नै डकार ना सकै
जड़ै पुरषार्थ ना बंडै सौ सौ टुकड़्यां म्हं
जड़ै तू हो सारे काम, सोच अर स्वादां म्हं
ओ बाप, आपणे हाथां तै, ऐसी करड़ी चोट मार
जगा इस भारत देस नै, इसे सुरग म्हं

(मूल बांगला में - चित्त जेथा भयशून्य)

दो पंछी

पिंजरे का पंछी था सोने के पिंजरे में अर बण का पंछी था बण म्हं
बेरा नी क्यूकर दोनूं मिलगे, पता नी के था ऊपर आळे के मन म्हं

बण का पंछी बोल्या, भाई पिंजरे के पंछी, चाल चाल्लें दोनों बण म्हं
पिंजरे का पंछी बोल्या, बण के पंछी, आजा ठाठ तै रवैं पिंजरे म्हं

बण का पंछी बोल्या, ना, मैं खुद नै बांधण कोनी द्यूं
सोने का पंछी बोल्या, हाय, मैं बाहर बण म्हं क्यूकर रहूं

बण का पंछी बाहर बैठ्या बण के गीत गार्या
पिंजरे का पंछी रट्या रटाया राग दुहरार्या
दोनुवां में कोई मेळ नीं

बण का पंछी बोल्या, भाई पिंजरे के पंछी, गा बण का गीत
पिंजरे का पंछी बोल्या, भाई बण के पंछी, सीख ले पिंजरे का गीत

बण का पंछी बोल्या, ना, मैं रटे-रटाए गीत गाणा ना चाऊं
पिंजरे का पंछी बोल्या, हाय, मैं क्यूकर बण का गीत गाऊं

बण का पंछी बोल्या, घणे नीले गगन में किते अड़चन ना कोई
पिंजरे का पंछी बोल्या, पिंजरे की परिपाटी चारों कान्नें तै घिरी होई

बण का पंछी बोल्या, एक बर छोड़ दे खुद नै बादळां कै हवाले
पिंजरे का पंछी बोल्या, खुद नै रखो सीमित सुख तै रहो अकेले

बण का पंछी बोल्या, ना उरै मैं उड़ ना पाऊं
पिंजरे का पंछी बोल्या, हाय बादळां म्हं बैठण की जगां ना थ्याऊं

इस तरां दोनूं पंछी एक दूसरे नै चावैं, पर पास ना आ पावैं
पिंजरा की तार चूंच तै छू छू कै, टुकुर टुकुर लखाए जावैं

दोनूं एक दूसरे नै समझ ना पावैं, ना खुद नै समझा पावैं
दोनूं अपणे अपणे पांख फड़फड़ावैं, धौरै आ दुखी सुर म्हं कहणा चावैं,

बण का पंछी बोल्या, ना के बेरा कद पिंजरा बंद हो जावै
पिंजरे का पंछी बोल्या, हाय मेर में उड़ण की ताकत ना आवै।

(मूल बांगला में - दुई पाखी)

संपर्क - 9416482156

आस्ट्रेलिया यात्राः एक झलक

□ सुरेन्द्र पाल सिंह

चमन में इख़्तिलात-ए-रंग-ओ-बू से बात बनती है,
हम ही हम हैं तो क्या हम हैं तुम ही तुम हो तो क्या तुम हो

ऑस्ट्रेलिया एक ऐसा महाद्वीप है जहां दुनिया के कोने कोने से लोग आकर यहाँ बसते रहे हैं। कभी सोने की चमक ने आकर्षित किया और कभी प्राकृतिक आपदाओं, कभी गृहयुद्ध, कभी फासिज़्म के अत्याचारों की मजबूरी ने। और कितने ही युवाओं को बेहतर शिक्षा, रोजगार व बेहतर भविष्य की तलाश यहाँ ले आई। सन 1788 से आज तक हर धर्म और राष्ट्रीयताओं के करीब 90 लाख व्यक्ति यहाँ आए और अभी भी उनका आना अनवरत जारी है।

समय समय पर इमीग्रेशन नीतियों में बदलाव लाए गए। एक दौर ऐसा भी था जब कंवारी लड़कियों और विधवाओं को यहाँ आने के लिए प्रोत्साहित किया गया। एक समय ऐसा भी था जब व्हाइट ऑस्ट्रेलिया की पॉलिसी लाई गई लेकिन बाद में इस पॉलिसी को वापस भी लिया गया।

मेलबर्न स्थित इमीग्रेशन संग्रहालय में गाँधी जी को समर्पित उनके पूरे जीवन को तस्वीरों, लेखों, फिल्मों और डिजिटल रूप में एक बड़ी गैलरी है जो हमें गौरवान्वित महसूस करवाती है। एक गैलरी रमज़ान के महीने को समर्पित है। इस्लाम, रमज़ान के रोज़े, कुरान शरीफ़ और पैग़म्बर मुहम्मद के बारे में जानकारियों से भरपूर ये गैलरी ऑस्ट्रेलिया की विविधता का सच्चा स्वरूप पेश करती है। सेंट पॉल केथेड्रल की दीवार पर लगा हुआ एक बड़ा पोस्टर कहता है - हम दुनिया के तमाम शरणार्थियों का तहेदिल से स्वागत करते हैं (We fully welcome the refugees of the world)

चायनीज़ म्यूजियम, चायना टाउन, मेलबर्न

ऑस्ट्रेलिया की कुल आबादी अढ़ाई करोड़ है। जिसमें ब्रिटिश 67.4%, आयरिश 8.7%, इतालवी 3.8%, जर्मन 3.7%, चायनीज़ 3.6%, मूलनिवासी 3.0%, भारतीय 1.7%, ग्रीक 1.6%, डच 1.2% और अन्य 5.3% हैं।

अगर एथनिक (नस्ल) हिसाब से देखा जाए तो गैर यूरोपीय लोगों में चायनीज़ एथनिक जनगणना बाकी समुदायों के मुकाबले अधिकतम है। ऑस्ट्रेलिया के मल्टिकलचरल कैनवस पर चायनीज़ संस्कृति का भी एक स्थायी रंग शामिल है जिसका एक दिलचस्प और रोमांचक इतिहास है।

चायना टाउन में स्थित चायनीज़ संग्रहालय अतीत की अनेकों स्मृतियों को संजोए हुए है। बेसमेन्ट में सोने की खदान का मॉडल चायनीज़ लोगों के सपने, तकलीफ़, मशक्कत, मारकाट के इतिहास की याद दिलाता है।

सन 1847-53 के दौर में करीब 3500 चायनीज़ फुजियान के इलाके से यहाँ मज़दूरी करने के लिए आए थे। इसके बाद जो दौर शुरू हुआ उसे गोल्ड रश के नाम से जाना जाता है।

सोने के जादू ने चीन के मुख्यतः केंटन इलाके से चायनीज़ पुरूषों के हजूमों को यहाँ खींचना शुरू कर दिया था। और इस प्रकार सन 1858 तक इनकी तादाद 40 हज़ार तक पहुँच गई। उन्हें निरुत्साहित करने के लिए चीन से मेलबर्न आने वाले जहाजों पर प्रति चायनीज़ यात्री 10 पौंड का भारी टैक्स लगा दिए जाने पर अब जहाज़ मेलबर्न की बजाय एडिलेड, किंग्स्टन आदि पोर्ट पर उतरने लग गए। केंटन से हांगकांग आना, 60 दिनों तक लम्बी समुद्री यात्रा करना और फिर करीब 500 किलोमीटर की पैदल यात्रा करते हुए सोने की खदानों में बाकियों से अधिक लाइसेंस फ़ीस देकर हिंसा, दंगे, विरोध के वातावरण में किस्मत आजमाइश करने के हालात का हम अंदाजा लगा सकते हैं।

सन 1857 में बकलैंड दंगे, 1860 तक टैक्स ना भर पाने पर करीब 2 हज़ार चायनीज़ का जेलों में होना और फिर सन 1860-61 में लैंबिग फ्लैट दंगों की आग में झुलसना, ये सब सहते हुए इन्होंने पाया कि सोना तो अब नहीं मिल पा रहा है।

अब दूसरे रोज़गार के धंधे शुरू किए गए। मेलबर्न में लिटील बर्क स्ट्रीट में ठिकाना बनाया गया जिसे अब चायना

टाउन कहा जाता है।

गैर यूरोपीय जनसंख्या को रोकने के लिए 1901 में लागू की गई व्हाइट ऑस्ट्रेलिया पॉलिसी के तहत यूरोपीय भाषाओं का डिक्टेशन टैस्ट पास करना आवश्यक कर दिया गया था। कभी हल्का कभी तेज विरोध होता रहा। आखिरकार 1973 में ऑस्ट्रेलिया की विविधता का एक नया दौर शुरू हुआ जब व्हाइट ऑस्ट्रेलिया नीति को वापस ले लिया गया। अब शुरू हो गया चीन, ताइवान, हांगकांग, मकाऊ, फिलीपींस, इंडोनेशिया, वियतनाम, कम्बोडिया, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों से वहाँ की आर्थिक, राजनैतिक परिस्थिति विशेष के हिसाब से ऑस्ट्रेलिया की ओर नया जीवन जीने की शिद्दत के साथ पलायन का दौर। सन 1989 में टिनामन स्क्वायर हादसे के बाद चीन और ताइवान से आए विद्यार्थियों को स्थायी तौर पर यहाँ बसने की इजाज़त मिल गई। धीरे धीरे काफ़िला बढ़ता गया और आज कितने ही रिहायशी इलाक़े और बाज़ार ऐसे हैं जहाँ अधिकतम चायनीज़ चेहरे ही दिखाई देते हैं।

...

ऑस्ट्रेलिया में मुसलमान

15 जून को यहाँ मेलबर्न में सेंडाऊन रेसकोर्स में चाँद रात ईद मल्टिकलचरल फेस्टिवल में जाना हुआ। मेलबर्न में अनेक स्थानों पर ईद मिलन का कार्यक्रम चल रहा था। चूंकि उस इलाके में अधिकतम मुस्लिम परिवार पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, बांग्लादेश और इण्डिया से हैं तो वहाँ ईद मनाने वाले इन्ही परिवारों से अधिक थे। वहाँ बाज़ार लगा था, खाने की अनेकों स्टॉल थी और स्टेज से गाए जाने वाले ज़्यादातर गीत पुराने हिंदी फिल्मों से थे। बहुत से युवक गीतों के हिसाब से थिरक भी रहे थे।

ऑस्ट्रेलिया में इस्लाम की एक लम्बी और दिलचस्प कहानी है। अगर हम ऑस्ट्रेलिया का नक्शा देखें तो पाते हैं कि तमाम शहर दक्षिण की ओर समुद्र तट पर बसे हैं । उत्तर दिशा में केवलमात्र डार्विन शहर दिखाई देता है। एडिलेड से डार्विन तक 54 घण्टे तक 2979 किलोमीटर का सफ़र करने वाली यात्री ट्रेन को द घन के नाम से जाना जाता है।

सन 1890 में शुरू हुई इस ट्रेन को अफ़ग़ानिस्तान से आए हुए ऊँट वालों के सम्मान में द अफगान एक्सप्रेस का नाम दिया गया था जो कालान्तर में द घन हो गया। जून 1860 में जो 3 अफ़ग़ान 24 ऊँटो को जहाज़ से लेकर मेलबर्न पहुँचे थे धीरे धीरे इनकी संख्या बढ़ते बढ़ते 1930 तक करीब 3000 हो गई। इनमें पश्तून, बलूच, पंजाबी, सिंधी, राजस्थानी, ईरानी, तुर्की, इजिप्शियन सभी शामिल थे लेकिन उनकी मोटी पहचान अफ़ग़ान के रूप में ही थी।

ऑस्ट्रेलिया के मध्य में और उत्तर (outback) की ओर जाना कोई आसान काम नहीं था/है। उस कठिन इलाके में बोझा ढोकर लम्बी यात्रा के लिए केवलमात्र ऊँट ही उपयुक्त जानवर था जो यहाँ अफ़ग़ान लेकर आए थे। उदाहरण के तौर पर सन 1860-61 में ब्रूक एंड विल्स एक्सपेडिसन के नाम से 3250 किलोमीटर की एक कठिन खोज यात्रा दक्षिण में मेलबर्न से लेकर उत्तर में गल्फ ऑफ कारपेंटारिया तक आयोजित की गई थी। इस यात्रा की कठिनता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है। इस दौरान ब्रूक और विल्स समेत अधिकतम सदस्यों की रास्ते में ही मौत हो गई थी। टीम का एक ही सदस्य पूरी यात्रा करके वापस लौट पाया था। अफ़ग़ान कारवाँ इस यात्रा में व अन्य उत्तरी इलाकों में रेल और टेलीफोन के जाल को बिछाने में मुख्य कारक था। सन 1930 तक मोटर गाड़ियों के आने से ऊँटों की आवश्यकता ख़त्म हो गई। आज वे ऊँट फिर पालतू से जँगली जानवर बन गए हैं।

सन 1861 में मैरी में इन अफ़ग़ानी मुसलमानों ने नमाज़ पढ़ने के लिए ऑस्ट्रेलिया की पहली झोपड़ीनुमा मस्ज़िद बनाई थी। इसके बाद सन 1888 में एडिलेड में दूसरी मस्ज़िद बनी। आज ऑस्ट्रेलिया में 340 मस्जिदें है और आबादी के हिसाब से 52.1% क्रिस्चियन के बाद 2.6% मुस्लिम आबादी का नम्बर आता है। तीसरे नम्बर पर बुद्धिस्ट का 2.4% और हिन्दू आबादी 1.9% है। सिक्ख और यहूदी क्रमशः 0.5% व 0.4% है। उल्लेखनीय है कि यहाँ 30.1% आबादी अपने आपको किसी धर्म से नहीं जोड़ती। बाकी 0.8 फ़ीसदी लोग अन्य छोटे धार्मिक समुदायों से जुड़े हैं।

मुस्लिम आबादी के परिवार 63 विभिन्न बैकग्राउंड से हैं जिनमें मुख्यतः लेबनान, टर्की, अफ़ग़ानिस्तान, बोस्निया-हेर्ज़गोवनिया, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, इराक़, बांग्लादेश, ईरान, फ़िजी, कुर्दिश, सोमालिया आदि है।

ईद मिलन के दौरान अलग अलग देशों से संबंध रखने वाले अनेक मुस्लिम व्यक्तियों से खुलकर विभिन्न मुद्दों पर बातचीत हुई। एक धर्मनिरपेक्ष और एक ही कानून को सख़्ती से मानने वाले देश में मुसलमान क्या सोचते है, उन्हें कैसा लगता है आदि विषयों पर चर्चा करना वास्तव में ज्ञानवर्धक था।

सम्पर्क - 9872890401

गहराता कृषि संकटः उभरते किसान संघर्ष

□ इंद्रजीत सिंह

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' के रचनाकार इकबाल साहब की एक लोकप्रिय नज़्म की दो पंक्तियां इस प्रकार हैं - ''जिस खेत से दहकां को मयस्सर नहीं रोज़ी, उस खेत के हर खोश-ए-गंदुम को जला दो।'' यानी जिस खेत से किसान की रोजी-रोटी भी नहीं चले उस खेत के गेंहू के सभी सिट्टे जला दो। सरसरी तौर पर इन्हें पढ़कर फसल को जला डालने जैसा विध्वंसक मतलब निकलता है। परंतु इन पंक्तियों को मुंशी प्रेमचंद चंद की मशहूर कहानी ''पूस की रात'' के साथ जोड़कर देखा जाए तो वर्तमान कृषि संकट का एक सटीक चित्रण सामने आता है। पूस (पोह) महीने की कंपा देने वाली सर्दी की रात में कंबल के बिना जंगली जानवरों से अपनी फसल की रखवाली करने वाला इस कहानी का हलकु नाम का कर्जदार पात्र होता है। आग जलाकर वह पास में लेट जाता है और आग की सुहानी सेंक की सुखद अनुभूति मे वह सो जाता है। सूरज चढ़ने पर भी वो गहरी नींद से उठ नहीं पाता और पूरे खेत को नील गायों का झुंड बर्बाद कर डालता है। हल्कू की पत्नी मुन्नी इस बर्बादी के मंजर को देखकर हल्कू को चीख चीख कर आवाजें देकर जगाती है। जहां मुन्नी के ऊपर गहरी उदासी छाई है तो वहीं हल्कू प्रसन्न था। मुन्नी ने चिंतित होकर कहा ''अब मजूरी करके माल गुजारी भरनी पड़ेगी। '' हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा ''रात की ठंड में यहां सोना तो ना पड़ेगा।'' सार यह कि फसल अच्छी होते हुए भी तो आखिर कर्जदार होने से नहीं बचे।

इकबाल व मुंशी प्रेमचंद लगभग समकालीन थे और आठ दशक पूर्व रचित उनकी रचनाओं का सार आज भी न केवल प्रासंगिक है बल्कि 1935-36 के दौर में किसानों की बदहाली के लिए यदि तत्कालीन साम्राज्यवाद और सामंतवाद जिम्मेदार था तो आज भी कार्पोरेट पूंजी के संरक्षण वाली नव-उदारवादी नीतियां ही जिम्मेदार हैं जिसे मौजूदा साम्राज्यवाद से गठजोड़ करके भारत का शासक वर्ग लागू कर रहा है।

कृषि व किसान की दशा में न केवल अपेक्षित सुधार नहीं हुआ बल्कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान जो खुशहाली के सपने जगे थे उन पर पानी फिर गया। विकास के तमाम दावों के बावजूद गत तीन दशकों से तो स्थिति और भी ज्यादा चिंताजनक मुकाम पर आ पहुंची है।

हाल के महीनों में देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में किसान आंदोलनों के जिस प्रकार के विस्फोट हुए हैं वे अपने आपमें अभूतपूर्व हैं। मध्यप्रदेश में गत वर्ष 6 मई को मंदसौर में पुलिस फायरिंग में 6 किसानों की जान चली गई। चार महीने पहले महाराष्ट्र में नासिक से चलकर बड़ी संख्या में महिलाओं समेत आदिवासी किसानों के लांग मार्च में पंचासों हजार किसानों द्वारा मुबंई में किया गया शंखनाद आप में एक ऐसी मिसाल है जिसने पूरे देश पर प्रभाव छोड़ा। इसी प्रकार राजस्थान के लाखों किसानों के जयपुर कूच ने पिछले दिनों वसुंधरा राजे की सरकार की चूलें हिला दी। आजादी के बाद ग्रामीण भारत में एक ऐसा उद्वेलन है जो निश्चित तौर पर समकालीन संकटग्रस्त राजनीतिक पटल पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रह सकता। पर शासक वर्ग और उनके कथित कृषि विशेषज्ञ व अर्थशास्त्री मीडिया के विमर्श में नीतियों से पैदा हुए संकट की तरह देखने की बजाय नीतियों के संदर्भ से मूंह फेर कर निकलना चाहते हैं । कृषि के लगातार गहरा रहे संकट को उन नीतियों से जोड़ कर देखना जरूरी है जिनसे ये संकट मुख्यत पैदा हुआ है।

गत फरवरी महीने में 2017-18 के बजट प्रस्ताव पेश करते हुए केन्द्रीय वित्तमंत्री अरूण जेतली ने लोकसभा में यह दावा किया था कि रबी फसलों पर लागत से डेढ़ गुणा समर्थन मूल्य उनकी सरकार पहले ही दे चुकी है। आगामी खरीफ फसलों पर डेढ़ गुणा समर्थन मूल्य दिए जाने का निर्णय मोदी सरकार ने 4 जुलाई को घोषित किया है। 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने संबंधी जुमला पिछले दो साल से दोहराया जाता रहा है। जबकि कृषि बजट में इसके अनुरूप कोई वृद्धि नहीं की गई। न्यूनतम समर्थन मूल्य के साथ बड़ी समस्या यह रही है कि यह सभी फसलों के लिए नहीं है। दूसरा यह कि समर्थन मूल्य निर्धारण के लिए जिस मानदंड का 2014 के चुनावों में वायदा किया था उससे भिन्न फार्मूला लगाकर हाल के समर्थन मूल्य को निर्धारित किया गया है। डा. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में बने राष्ट्रीय किसान आयोग की सिफारिशों में लागत से डेढ़ गुणा समर्थन मूल्य सुनिश्चित करने का मानदंड असल में सी-2 +50 प्रतिशत था न कि ए 2+ परिवार द्वारा लगाई गई श्रम+50 प्रतिशत । सी 2 में स्वयं की भूमि का किराया भी शामिल होता है जो उस समय पर ठेके पर जमीन चढने के रेट के बराबर माना

जाना चाहिए। इसलिए यह सरासर एक और झांसा दिये जाने के अलावा कुछ भी नहीं है।

तीसरा यह कि हकीकत में सरकारी खरीद एजेंसियां मंडी में इतनी देर से प्रवेश करती हैं कि तब तक अधिकतर किसान अपनी फसलों को औने-पौने भावों पर बेचने को मजबूर हो जाते हैं। सरसों की खरीद इसका ताजा उदाहरण है। सरसों की बिक्री करवाने के लिए हरियाणा में किसान सभा को दो महीने से ज्यादा आंदोलनरत रहना पड़ा फिर भी पूरी सरसों नहीं खरीदी गई। इसके अलावा गन्ने और सरसों की बकाया राशि अभी तक नहीं मिली है।

मूल प्रश्न ये है कि मौजूदा कृषि नीतियों की दिशा कृषि उत्पादों के लागत मूल्य घटने और विक्रय मूल्य में वांछित बढ़ोतरी के संकेत नहीं देती। लागत और आय के ये प्रतिकूल समीकरण नवउदारीकरण की उन नीतियों का अनिवार्य परिणाम हैं जिनका आगाज 1990-91 में हुआ था। गत चार साल के शासन के दौरान वही नीतियां और भी अधिक आक्रामक रूप में लागू रही हैं। जिसका परिणाम है कि पिछले चार साल का शासन आज तक का सबसे ज्यादा किसान व गरीब विरोधी शासन सिद्ध हुआ है।

नोटबंदी के कदम और पशु क्रुरता कानून में किए गए संशोधन ने पशुपालन की कमर तोड़ने का काम किया है। पशुपालन के माध्यम से किसान-खेत मजदूरों की आजीविका में एक निश्चित योगदान मिलता है। महिलाओं का विशेष तौर पर एक बड़ा हिस्सा पशुपालन से अपना गुजारा चलाता है। तथाकथित गौरक्षकों के क्रियाकलापों ने भी पशु व्यापार को चौपट किया है। पशु व्यापारी अब इधर उधर पशुओं को लाने ले जाने से डरने लगे हैं। मेवात के पशु पालक किसान पहलू खान और रकबर खान की पीट-पीट कर जघन्य हत्याएं हो चुकी हैं।

एक ओर तो कृषि उत्पादन में लगने वाले बीज, खाद, दवाई आदि के भाव और कृषि उत्पादों के भावों के संचालन में जिस तरह शासन ने अपना हाथ खींच लिया उतना ही यह प्रक्रिया कार्पोरेट जगत के नियंत्रण में चली गई। वायदा व्यापार और सट्टाबजारी द्वारा उत्पादक किसान और उपभोक्ता जनता दोनों के हितों पर कुठाराघात करके कंपनियां महामुनाफे लूट रही हैं। कर्जों में दबे किसान-खेत मजदूरों द्वारा आत्महत्याएं बढ़ रही हैं। दूसरी ओर आर्थिक विषमता की खाई इस गति से बढ़ रही है कि 2017 की सकल घरेलू उत्पाद का 73 प्रतिशत हिस्सा मात्र 1 प्रतिशत लोगों ने हड़प लिया। प्रधानमंत्री फसल बीमा के नाम पर निजी कंपनियों के खाते में किसानों की सहमति के बिना पैसा डाला जा रहा है।

परोक्ष व प्रत्यक्ष रूप में शासनतंत्र कृषि उत्पादों की सरकारी खरीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली दोनों को कमजोर कर रही है। इसी का नतीजा है कि कृषि उत्पादन में रिकार्ड वृद्धि होने के बावजूद 2014 की तुलना में हमारा देश भुखमरी के सूचांक में दुनिया के स्तर पर 55 वें स्थान से 100 वें शर्मनाक स्थान पर खिसक गया। असल बात यह है कि नीतियों की दिशा बदले बिना टुकड़ों में घोषणाएं किए जाने की रणनीति अपने आप में कुआं खोदकर आग बुझाने जैसी बात रहेगी।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां 60 प्रतिशत से अधिक जनता की रोजी कृषि पर निर्भर हो वहां कृषि संकट समूची व्यवस्था को प्रभावित करता है। कोई भी शासन यदि रणनीतिक महत्व के इस क्षेत्र को भूमंडलीकरण की अन्यायपूर्ण और भेदभावपूर्ण प्रणाली की भेंट चढ़ाकर जनाक्रोश से नहीं बच सकता। 'पूस की रात' के हल्कू की फसल को आज भी सांड, गाय, बंदर, सूअर और राजनीति में घुस आए आवारा बर्बाद कर रहे हैं और लूट रहे हैं। पर अब हल्कू फसल की बर्बादी पर खुश होने की बजाय उसका हिसाब लेकर ही रहेगा । आज वो समझ चुका है कि मजदूरों और किसानों को एकता करके सांझा संघर्ष करना होगा।

संपर्क - 9416495827

नई कलम

गरीब बच्चे बन सकते हैं अच्छे

□ अंजली तुसंग

बहुत सारे गरीब हैं बच्चे,
बन सकते हैं ये भी अच्छे
कोई उठाता कचरा तो कोई करता मजदूरी
अगर उनको रोके तो कहते हैं हमारी मजबूरी
पेट भरने के लिए मांगते हैं भीख
उनको दी जानी चाहिए अच्छी सीख
सड़कों पर बच्चे भूखे दिखाई देते
उनको देख लोग मुंह फेर लेते
किस किस का लोग भरेंगे पेट
पढ़ाई लिखाई का उनको दें संदेश
गरीब बच्चों का बढ़ाओ मान
तभी होगा हमारा देश महान

सम्पर्कः 7027252914

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9991878352
	-	ओमप्रकाश करुणेश	9255107001
यमुनानगर	-	ब्रह्मदत्त शर्मा	9416955476
	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	प्रेमचन्द सैनी	9729883662
सफीदों	-	बहादुर सिंह 'अदिल'	9416855973
जीन्द	-	राम मेहर खरब	9416644812
	-	मंगतराम शास्त्री	9516513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकूला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
फतेहाबाद	-	पवन सागर	9996040307
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
गुडगांव	-	जगदीप सिंह	9416154057
	-	अशोक गर्ग	9996599922
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
	-	ऋषिकेश राजली	9467024104
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	नफीस अहमद	7082290222
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	सजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	-	www.notnul.com/desharyana	

पाठक - पाती

प्रेम चन्द अग्रवाल

(अम्बाला शहर)

सम्पादक मंडल, देसहरियाणा

वर्ष-3, अंक: 17 में प्रकाशित परिसंवाद पर "हरियाणा की संस्कृति के विविध रंग"पढ़ने का सौभाग्य मिला। परिसंवाद का विषय और वस्तु बहुत ही पसंद आई। विशेष रूप से सिद्दीक अहमद मेव साहब द्वारा दी गई जानकारी व प्रस्तुति तो बहुत ही मन को भायी है। कृपया उनके प्रति मेरे भाव उन तक पहुंचाने की कृपा करें।

इस परिसंवाद के प्रकाशन में श्री प्रदीप कासनी की चर्चा में अंग्रेजी शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। (मेरा यहां पर कासनी साहब पर किसी भी तरह की आपत्ति नहीं है) आपस की बातचीत में इस प्रकार की भाषा शायद इतनी अटपटी चाहे न लगे, लेकिन लेखन में पढ़ते समय बहुत ही अटपटी सी लगती है। मेरा निवेदन यह है कि क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि उनके अंग्रेजी के शब्दों का प्रकाशन करते समय हिन्दी रूपांतरण लिखा जाता। मैं यह मानता हूं कि देश में तथाकथित पढ़े लिखे वर्ग की आजकल इसी प्रकार की खिचड़ी भाषा बनती जा रही है।

देसहरियाणा हिन्दी/हरियाणवी पत्रिका है अतः उद्देश्य भी हिन्दी का प्रसार ही होना चाहिये। यह आप जैसे साहित्य से जुड़े महानुभावों का कर्तव्य बन जाता है कि समाज को उचित व संस्कारित परोसा जाए और भाषा के क्षेत्र में आम आदमी का नेतृत्व करे।

निवेदन है यदि कुछ भी अनुचित लगे तो क्षमा कर दें।

सम्पर्क - 9467909649

(आदरणीय, प्रेमचंद अग्रवाल जी, पत्र लिखने के लिए धन्यवाद। आपके सुझाव बहुत महत्वपूर्ण हैं। हम कोशिश करेंगे कि इन सुझावों को अपनी कार्य प्रणाली का हिस्सा बनाएं। - सं.)